रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियां

प्रकाशन विभाग

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बाल कहानियां

अनुवाद : देवलीना

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

प्रथम संस्करण : माघ 1905 (जनवरी 1984)
द्वितीय संस्करण : आश्विन 1917 (सितम्बर 1995)
तृतीय संस्करण : शक 1922 (2001)
पुनर्मुद्रण : शक 1923 (2002)

@ प्रकाशन विभाग

ISBN 81-230-272-6

मूल्य : 60.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
पटियाला हाउस, नई दिल्ली 110 001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110 001
- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110 001
- हॉल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110 054
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400 038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700 069
- राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई- 600 090
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800 004
- प्रेस रोड, निकट गवर्नमेंट प्रेस, तिरुअनंतपुरम-695 001
- प्रथम तल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560 034
- अम्बिका कॉम्पलैक्स, प्रथम तल, पाल्डी, अहमदाबाद-380 007
- नवजन रोड, उजान बाज़ार, गुवाहाटी-781 001
- 27/6 राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226 001
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500 004

विक्रय काउंटर ● पत्र सूचना कार्यालय

- 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 (म.प्र.)
- सी.जी.ओ. काम्प्लैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.)
- बी-7बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर-302001 (राजस्थान)

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-II नई दिल्ली।

दो शब्द

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारतीय साहित्याकाश के ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र थे, जिन्होंने काव्य के अलावा नाटक, उपन्यास तथा कहानी जैसी साहित्य की अन्य विधाओं को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से समृद्ध कर दुनिया में भारत का नाम रोशन किया।

प्रस्तुत संकलन में विश्वकवि की ऐसी ग्यारह कहानियां संकलित की गई हैं, जो बाल-मन और किशोर-मन की अपनी सूक्ष्म पकड़ के कारण बालकों और किशोरों को विशेष रूप से आकृष्ट करेंगी। कहानियों के चयन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि यह उनका मनोरंजन करने के साथ-साथ उनमें मानव-मूल्यों के प्रति आस्था भी उत्पन्न करें। 'छुट्टी', 'पोस्टमास्टर' और 'काबुलीवाला' जैसी बहुचर्चित कहानियां भी इस संग्रह में संकलित की गई हैं।

आशा है, इनसे बालकों और किशोरों के साथ-साथ वयस्कों का भी समान रूप से मनोरंजन होगा।

अनुक्रम

1.	दान-प्रतिदान	1
2.	छुट्टी	8
3.	पोस्टमास्टर	16
4.	काबुलीवाला	23
5.	रामकनाई की बेवकूफी	32
6.	लेन-देन	38
7.	मुन्ना बाबू की वापसी	46
8.	सम्पत्ति समर्पण	55
9.	अनाधिकार	65
10.	स्वर्ण मृग	71
11.	इच्छा पूर्ति	82

दान-प्रतिदान

बड़ी बहू जो कुछ बोल गई, उसमें जितनी धार थी, उतना ही ज़हर भी घुला हुआ था। जिस अभागिन को इतनी खरी-खोटी कही गई थी, उसका मन भी बुरी तरह जल-भुन गया।

ये बातें विशेषकर उस अभागिन के पति को लेकर कही गई थी..... और पति, जिनका नाम राधामुकुंद था, रात का खाना खाकर पास ही बैठ कर हुक्का पीकर खाना हज़म कर रहे थे। कड़वी बातें सुनकर भी खाना हज़म करने में उन्हें तकलीफ हो रही थी, ऐसा लग नहीं रहा था। अविचलित भाव के साथ हुक्का पीने के बाद आदत के अनुसार वह समय पर सो भी गए।

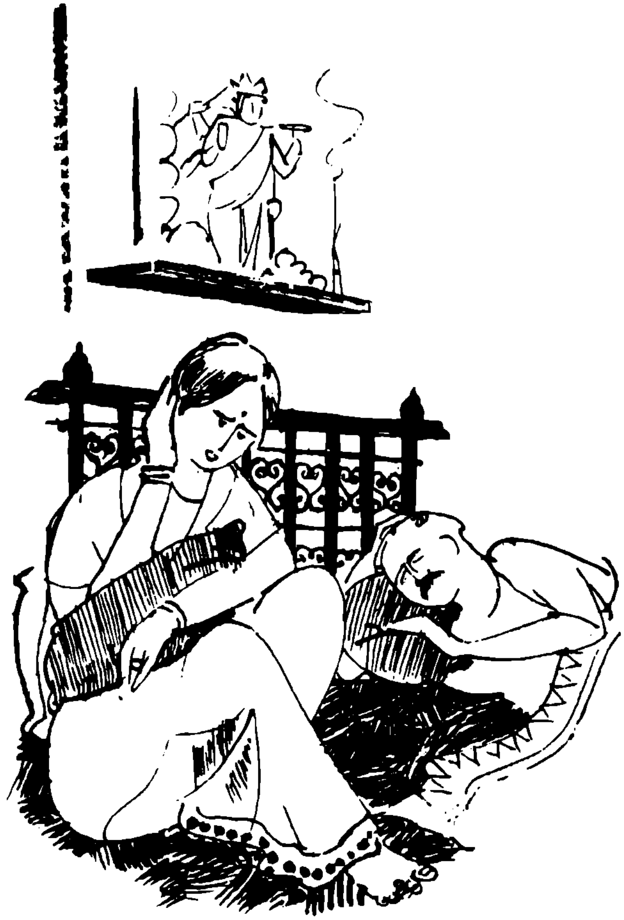

पर इतने असाधारण हाज़मे की उम्मीद सभी से नहीं की जा सकती। रासमणि ने आज सोने के कमरे में आकर ऐसा व्यवहार किया, जैसा करने की हिम्मत उसने पहले कभी नहीं की थी। और दिन तो वह शान्त भाव से बिस्तर में आकर चुपचाप पति के पैर दबाने में जुट जाती, पर आज चूड़ियों की झनझनाहट के साथ पति की तरफ पीठ करके बिस्तर के एक कोने में लेट गई और रोने लगी। उसकी सिसकियों के साथ-साथ बिस्तर भी हिल-डुल रहा था।

राधामुकुंद उस तरफ ध्यान न देकर मसनद को बांहों में दबा कर सोने की कोशिश करने लगे। पर उनकी ऐसी उदासीनता से पत्नी और भी अधीर हो उठी। यह देखकर अन्त में वह धीरे से, पर गंभीर आवाज में

बोले, ''मुझे किसी आवश्यक काम से सुबह उठना है। इसलिए इस समय मेरा सो जाना जरूरी है।''

पँति की आवाज सुनते ही रासमणि अपने को और नहीं रोक सकी, और तुरन्त फ़फक पड़ी।

राधामुकुंद ने धीरे से पूछा, ''क्या हुआ है?''

रासमणि रुंधे स्वर में बोली, ''तुमने सुना नहीं?''

''सुना है। पर भाभी ने एक बात गलत तो नहीं कही। क्या भैया का ही खाकर बड़ा हुआ हूं?'' तुम्हारे कपड़े-लत्ते, गहने वगैरह क्या मैंने अपने बाप के घर से लाकर दिए हैं? जो खाने-पहनने के लिए देता है, अगर वह दो बातें सुना भी दे तो उसे खाने-पहनने के साथ शामिल कर लेना चाहिए।''

''ऐसा खाने-पहनने से तो मैं बाज आई।''

''जीना तो पड़ेगा ही।''

''इससे तो अच्छा मर जाना है।''

''जब तक मौत नहीं आती सोने की ही कोशिश करो। आराम पाओगी।'' कहकर राधामुकुंद उपदेश और दृष्टांत देते हुए पत्नी को समझाने लगे।

राधामुकुंद और शशिभूषण सहोदर भाई नहीं थे। बहुत करीब का रिश्ता भी नहीं था। गांव का ही रिश्ता था, पर उन दोनों के बीच का प्यार सहोदर भाइयों से कुछ कम नहीं था। बड़ी बहू ब्रजसुंदरी को यह थोड़ा खटकता था। खासकर शशिभूषण देने के मामले में छोटी बहू और बड़ी बहू के बीच कोई फर्क नहीं रखते थे। उल्टे, जो चीज़ इक्ट्ठी दो नहीं मिलती थीं, उस चीज से वह अपनी पत्नी को वंचित कर छोटी बहू को ही देते थे। कई बार तो पत्नी की सलाह से अधिक भरोसा भाई राधामुकुंद की सलाह पर करते थे। शशिभूषण आदमी थोड़े ढ़ीले किस्म के थे, इसलिए घर का और व्यापार-सम्बन्धी सारा कामकाज उन्होंने राधामुकुंद पर छोड़ रखा था। बड़ी बहू के मन में हमेशा शक बना रहता कि राधामुकुंद चुपके-चुपके उसके पति को ठगने का षड्यंत्र रच रहे हैं। इसका प्रमाण उसे ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता था, इसलिए राधामुकुंद के प्रति उसका विद्वेष और भी बढ़ता जाता था। बड़ी बहू को लगता कि प्रमाण और सबूत आदि भी षड्यंत्र रच कर उसके विरोधी पक्ष में मिल गए हैं। इस वजह से प्रमाणों पर गुस्सा करके और फिर इन प्रमाणों के प्रति अवहेलना का भाव दिखा कर वह अपना संदेह और भी मज़बूत बनाती। बड़ी बहू के मन में बड़े यत्न से पाली हुई यह आग ज्वालामुखी की तरह और कभी-कभी भूकम्प की तरह, उसकी कड़वी और रूखी भाषा के रूप में फूट पड़ती थी।

रात में राधामुकुंद को नींद आई या नहीं, हम कह नहीं सकते, लेकिन दूसरे दिन सुबह उठकर वह उदास भाव से शशिभूषण के पास जाकर खड़े हो गए। शशिभूषण उन्हें देखकर घबराकर बोले, ''राधे! तुम ऐसे क्यों दीख रहे हो? कहीं बीमार तो नहीं हो?''

राधामुकुंद दबी आवाज में बोले, ''भैया मेरा यहां और रहना शायद ठीक नहीं है।'' इतना कह कर

वह कल शाम को बड़ी बहू की कही हुई जली-कटी बातों को शान्त भाव से सुना गए।

शशिभूषण हंस कर बोले, ''यह बात है। पर यह तो कोई नई बात नहीं। वह ठहरी पराए घर की लड़की। मौका मिलने पर दो-चार बातें सुनाने से चूकेगी नहीं। पर क्या सिर्फ इसी वजह से घर के अपने लोग घर छोड़ कर चले जाएंगे। कभी-कभी तो वह हमें भी बातें सुना दिया करती है, पर इसके कारण कोई घर-गृहस्थी तो नहीं छोड़ता।''

राधामुकुंद ने कहा, ''औरत की बातें क्या मैं नहीं सह सकता? फिर तो पुरुष होकर जन्म लेना ही बेकार है। मुझे डर सिर्फ इस बात का है कि मेरे कारण तुम्हारी गृहस्थी में अशान्ति पैदा न हो।''

शशिभूषण बोले, ''तुम्हारे चले जाने से मुझे किस बात की शान्ति रहेगी?''

बातचीत और आगे नहीं बढ़ी। राधामुकुंद लम्बी सांसे लेकर चले गए। पर उनका मन भारी ही रहा।

दूसरी तरफ बड़ी बहू का आक्रोश दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा था। वह बात-बेबात राधामुकुंद पर ताने कसने लगी। जली-कटी सुना-सुना कर देवरानी को धराशायी करने लगी। राधामुकुंद चुपचाप हुक्का पीते और बड़ी बहू की गाली-गलौज अनसुनी कर देते। बाद में पत्नी की रोनी सूरत देखते ही आंखें बन्द कर सोने का बहाना करते, पर यह स्थिति अब उनके लिए भी असहनीय हो गई थी।

शशिभूषण के साथ उनका सम्बन्ध आज का नहीं था। दोनों भाई जिन दिनों ठंडा बासी भात खा के, पोथी लेकर पाठशाला जाते, एक ही साथ सलाह मशविरा कर गुरुजी से नज़रे बचा कर पाठशाला से भाग कर ग्वालों के लड़कों के साथ तरह-तरह के खेल खेलते, एक ही बिस्तर पर सोकर धीमी रोशनी में मौसी से कहानियां सुना करते, घर वालों से छिप कर दूसरे मुहल्ले में जाकर रात को नाटक देखते, और सुबह पकड़े जाने पर अपराध के लिए समान रूप से दंड आपस में बांट लेते..... उस समय कहां थी ब्रजसुंदरी और कहां थी रासमणि। जीवन के इतने सारे विगत को एक ही दिन में खोकर कहीं जाया जा सकता था? यह बंधन स्वार्थ का बंधन था, यह प्रगाढ़ भाईचारा खाने-पीने की आशा-प्रत्याशा का ही छद्म रूप था, ऐसे सन्देह या इसके आभास मात्र को भी दोनों विषैला समझते थे। इसलिए और कुछ दिनों तक इसी तरह से चलता तो क्या होता कहना मुश्किल है, पर इसी समय एक बड़ी भयानक घटना घटी।

जिन दिनों की मैं बात बता रहा हूं, उन दिनों एक निश्चित दिन पर सूर्यास्त के पहले सरकारी लगाग न देने पर जमींदारी या सम्पत्ति की नीलामी हो जाती थी।

एक दिन खबर मिली कि शशिभूषण की एक मात्र जमींदारी परगना एनातशाही लाट साहब को लगान न चुकाने पर नीलाम हो गई है।

राधामुकुंद अपने स्वाभाविक शान्त भाव से बोले, ''गलती मेरी ही है।''

शशिभूषण बोले, "गलती तुम्हारी कैसे हो सकती है? तुमने तो लगान का चालान भेजा था। रास्ते में अगर लुटेरों ने लूट लिया तो तुम क्या कर सकते थे?"

अपराध किसका था, इस पर अभी राय देना ठीक न होगा... अभी तो घर-गृहस्थी चलाने की समस्या थी। शशिभूषण एकाएक कोई नया काम शुरू करें, न तो उनका ऐसा स्वभाव था और न ही ऐसी शिक्षा। उनका हाल कुछ-कुछ ऐसा ही था जैसे नदी के पक्के घाट की सीढ़ियों से अचानक गहरे पानी में फिसल पड़े हों।

सबसे पहले वह पत्नी का जेवर आदि गिरवी रखने के लिए तत्पर हुए। राधामुकुंद रुपयों से भरी एक थैली शशिभूषण के सामने रखकर बोले, "गहने गिरवी रखने की कोई जरूरत नहीं।" उन्होंने पहले ही अपनी पत्नी के गहने गिरवी रखकर रुपये का प्रबन्ध कर लिया था।

घर में एक अजीब परिवर्तन नज़र आने लगा। सुख और सम्पन्नता के दिनों में बड़ी बहू जिसे घर से निकालने के लिए हजारों बहाने ढूंढ़ती थी, विपत्ति के दिनों में व्याकुल होकर उसे ही अपना अविलम्ब मानने लगी। ऐसे बुरे समय में दोनों भाईयों में से किस पर अधिक भरोसा किया जा सकता था, यह समझने में उसे देर नहीं लगी। बड़ी बहू कभी राधामुकुंद के प्रति विद्वेष भाव रखती थी, यह अब समझ पाना भी मुश्किल था।

राधामुकुंद ने पहले से ही स्वतंत्र रूप से रोजी कमाने के लिए अपने को तैयार कर लिया था। पास के शहर में उन्होंने मुख्तारी शुरू कर दी। उन दिनों मुख्तारी में आज की तुलना में अधिक पैसा था। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और होशियारी से राधामुकुंद ने शुरू से ही अपना काम अच्छी तरह जमा लिया। धीरे-धीरे जिले के अधिकतर पैसे वाले जमींदारों का काम उनके हाथों में आ गया।

अब रासमणि की हालत पहले से बिल्कुल उल्टी थी। अब तो ब्रजसुन्दरी और शशिभूषण रासमणि के पति के पैसों पर पल रहे थे। इस बात को लेकर रासमणि ने स्पष्ट रूप से किसी प्रकार अभिमान दिखाया था या नहीं, कह नहीं सकते, पर शायद कभी किसी दिन इशारे से या कोई आभास देकर उसने अपना मनोभाव व्यक्त किया होगा... शायद घमंड से पैर पटक कर या हाथ नचा कर या फिर किसी विषय पर बड़ी बहू की इच्छा के विपरीत अपनी इच्छा जाहिर कर... लेकिन सिर्फ एक ही बार। उसके दूसरे ही दिन से वह पहले से भी अधिक नम्र बन गई, क्योंकि यह बात उसके पति के कानों तक पहुंच गई थी। उस रात को राधामुकुंद ने अपनी पत्नी से क्या कहा होगा, यह तो कहना मुश्किल है, पर दूसरे ही दिन से रासमणि बिल्कुल मौन-सी हो गई। बड़ी बहू की नौकरानी की तरह रहने लगी। सुनने में आया कि राधामुकुंद उसी रात पत्नी को उसके पीहर भेजने की तैयारी करने लगे थे, और एक सप्ताह तक उन्होंने रासमणि का चेहरा तक नहीं देखा था। अन्त में ब्रजसुन्दरी ने ही देवर का हाथ पकड़ कर मिन्नत-आरजू की और पति-पत्नी के बीच फिर से मेल करवाया। ब्रजसुन्दरी ने कहा था, "इस घर में छोटी बहू की आई हुई लड़की है और मैं कब से तुम लोगों के घर हूं, भाई। तुम्हारे हमारे बीच जो हमेशा का मधुर रिश्ता है, वह इसे क्या समझेगी? बच्ची है, उसे माफ कर दो।"

राधामुकुंद घर-खर्च के सारे रुपये ब्रजसुन्दरी के हाथों में लाकर देते थे। रासमणि को अपनी जरूरत की चीजें बंधे-बंधाए ढंग से या फिर ब्रजसुन्दरी से अनुरोध करके, लेनी पड़ती थी। यद्यपि शशिभूषण के चेहरे पर पहले की ही तरह हँसी खिली हुई रहती थी, फिर भी छिपी हुई बीमारी की वजह से वे दिन पर दिन दुबले होते जा रहे थे। शशिभूषण में यह परिवर्तन दूसरे भले न समझ पाए हों, पर भैया का चेहरा देखकर राधामुकुंद की आंखों से रात की नींद गायब हो गई। कभी-कभी आधी रात गए रासमणि जाग उठती तो देखती राधामुकुंद लम्बी-लम्बी सांसें लेकर बेचैनी से करवट बदल रहे हैं।

राधामुकुंद कई बार शशिभूषण के पास जाकर उन्हें ढांढ़स बंधाते। कहते, "भैया, आप चिन्ता न करें। आपकी पैतृक सम्पत्ति मैं जरूर वापस लेकर रहूंगा... किसी भी हालत में छोडूंगा नहीं। अब ज्यादा दिनों की बात नहीं हैं।"

और सच में, ज्यादा दिन लगे भी नहीं। शशिभूषण की सम्पति जिस व्यक्ति ने खरीदी थी, वह व्यापारी था। जमींदारी के मामले में वह बिल्कुल अनभिज्ञ था। उसने वह सम्पत्ति सम्मान के लिए खरीदी थी। पर लगान उसे घर से भरना पड़ रहा था। मुनाफ़ा एक पैसे का भी नहीं था। यही जमींदारी जब इन लोगों के हाथों में थी, राधामुकुंद खुद साल में दो बार लठैतों की मदद से लूटमार कर लगान वसूल लाते थे। प्रजा भी उनका कहना मानती थी। छोटी जाति के व्यापारी जमींदार से वह मन ही मन

घृणा भी करती थी। राधामुकुंद के कहने पर उन लोगों ने हर तरह से नए जमींदार का विरोध किया।

अन्त में बेचारा व्यापारी जमींदारी के मुकदमें से परेशान होकर जमींदारी बेचने के लिए व्याकुल हो उठा। बहुत कम कीमत पर राधामुकुंद ने अपनी पहले की सम्पत्ति दुबारा खरीद ली।

यह पढ़ने में जितना कम समय लग रहा है, वास्तव में उतने कम समय में यह सारा काम हुआ नहीं। इस बीच करीब दस साल गुजर गए। दस साल पहले शशिभूषण यौवन के अन्तिम चरण और प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भिक भाग से गुजर रहे थे, पर इन आठ-दस सालों के बीच वह मन ही मन घुलते रहने और मन की बेचैनी के कारण बड़ी तेजी से बूढ़े हो गए। राधामुकुंद के पास पैतृक सम्पत्ति वापस लाए जाने पर जाने क्यों शशिभूषण उतना खुश नहीं हो पाए। बहुत अरसे से इस्तेमाल न करने के कारण उनके मन की वीणा जैसे झंकृत ही न हो पाती थी। हजार बार तार खींचने पर भी, तार ठीक-ठीक बंध नहीं रहे थे। उसमें से अब पहले की तरह सुर नहीं निकल पा रहा था।

गांव के लोगों ने बहुत खुशी मनाई। सम्पत्ति के पुनरुद्धार की खुशी में उन लोंगों ने शशिभूषण से भोज की मांग की। शशिभूषण ने राधामुकुंद से पूछा, क्यों भाई, तुम्हारी क्या राय है?''

राधामुकुंद ने कहा, ''क्यों नहीं। शुभ दिन में आनन्द तो मनाना ही चाहिए।''

गांव में इस तरह का भोज बहुत दिनों से नहीं हुआ था। गांव के बच्चे बूढ़े सभी ने जी भर कर खाया। ब्राह्मणों को दक्षिणा मिली। गरीब-दुखियारे पैसे और कपड़े पाकर आशीर्वाद दे गए।

सर्दी का मौसम शुरू ही हुआ था। मौसम भी कुछ अच्छा नहीं था। खाना परोसने से लेकर और भी कई तरह के कामों में एक तो शशिभूषण को बहुत परिश्रम करना पड़ा और उनका नियम भी बहुत-कुछ टूट गया। शरीर पहले ही बहुत टूट चुका था। टूटा शरीर इतना भार नहीं सह सका... उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया और भी कई लक्षणों के साथ कंपकंपी के साथ उन्हें बुखार आ गया। वैद्य ने सिर हिला कर कहा, ''बड़ी कठिन बीमारी है।''

रात में दो-तीन बज रहे होंगे। मरीज के कमरे से सभी को बाहर निकाल कर राधामुकुंद ने शशिभूषण से पूछा, ''भैया, तुम्हारे बाद सम्पत्ति किसे किस तरह से बांटू, यह मुझे बता दो।''

शशिभूषण बोले, ''भैया, मेरे पास है ही क्या कि मैं किसी को कुछ दे जाऊं?''

राधामुकुंद ने कहा, ''यह सब कुछ तुम्हारा ही तो है।''

शशिभूषण कुछ बोले नहीं। राधामुकुंद बोलने लगे। उनकी मुद्रा हमेशा की तरह शान्त और स्वाभाविक थी। बोले, ''भैया, अच्छी तरह से कहने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है। मेरे मन की असलियत भगवान ही जानते है। दुनिया में अगर कोई मुझे समझ सकता हे तो तुम्ही मुझे समझते हो। बचपन से ही हमारे-तुम्हारे मन में कोई भेदभाव नहीं रहा । हां, बाहर से दोनों में भेद था। वह अन्तर था – तुम धनी थे, मैं गरीब। मैंने जब देखा कि इस छोटी सी वजह से तुम्हारे हमारे बीच विच्छेद की सम्भावना

धीरे-धीरे गम्भीर रूप लेती जा रही है, तो मैंने ही यह दूरी मिटाने की कोशिश की। सदर में भेजे गए लगान को मैंने ही लुटवाकर तुम्हारी जायदाद नीलाम करवा दी थी।''

शशिभूषण जरा-सा भी विस्मय प्रकट न कर थोड़ा मुस्कराए, फिर रुंधी आवाज में बोले, ''तुमने जो कुद किया, अच्छा ही किया, भाई! पर जिस उद्देश्य के लिए इतना कुछ किया, क्या वह सफल हुआ? क्या उसे अपने पास रख पाए? दयामय हरि।''

इतना कहकर शान्त, मृदु मुस्कराहट लिए हुए शशिभूषण की आंखों से दो बून्द आंसू टपक पड़े।

राधामुकुंद शशिभूषण के दोनों पैरों के नीचे सिर रखकर बोले, ''भैया मुझे माफ किया न?''

शशिभूषण राधामुकुंद को अपने पास बुलाकर उनका हाथ अपने हाथों में लेकर बोले, ''भाई, मुझे पहले से ही सब कुछ मालूम था। जिनके साथ मिलकर तुमने षड्यंत्र रचा था, उन्हीं लोगों ने आकर मुणे सब कुछ बता दिया था। मैनें तो तुम्हें उसी समय माफ कर दिया था।''

राधामुकुंद अपने दोनों हाथों से मुंह ढक कर रोने लगे।

बहुत देर के बाद राधामुकुंद ने कहा, ''भैया, अगर तुमेने मुझे माफ कर दिया है तो तुम्हे अपनी सम्पति लेनी पड़ेगी। नाराज होकर इसे वापस मत करो।''

शशिभूषण कुछ बोल नहीं पाए। उस समय तक उनकी बोली बंद हो चुकी थी। राधामुकुंद की तरफ अपलक देखते हुए उन्होंने एक बार अपना दाहिना हाथ ऊपर की तरंफ उठाया। इससे क्या समझा जा सकता है, कह नहीं सकते, शायद राधामुकुंद ने समझा हो।

छुट्टी

बच्चों के सरदार फटिक चक्रवर्ती के दिमाग में एक नई बात आई। नदी के किनारे साल का जो बड़ा सा तना नाव का मस्तूल बनाने के लिए रखा हुआ था, बच्चे उसे लुढ़का कर ले जाएं।

जिस व्यक्ति की यह लकड़ी थी, जरूरत के समय उसे कितनी असुविधा होगी, या वह इसे न पाकर कितना हैरान होगा, नाराज होगा, यह सोचकर बच्चों ने अपने सरदार के इस प्रस्ताव पर 'हां' भर दी।

कमर कसकर सभी बच्चे मन लगाकर काम शुरू ही करने वाले थे कि फटिक का छोटा भाई मक्खनलाल गंभीर होकर उस तने पर जाकर बैठ गया। लड़के उसकी गंभीर मुद्रा देखकर थोड़ा उदास हो गए।

एक ने आगे बढ़कर उसे ज़रा-सा हिलाने की कोशिश की, पर वह अविचलित भाव से बैठा ही रहा। यह तत्वज्ञानी लड़का सोच रहा था कि खेलकूद आदि बड़ी बेकार की चीज है।

तभी फटिक डपट कर बोला, "देख, बड़ी मार मारूंगा। खैरियत चाहता है तो अभी यहां से उठ जा।"

यह सुनकर मक्खन और भी अच्छी तरह जमकर तने पर बैठ गया।

ऐसी हालत में दूसरे बच्चों के सामने अपना मान बचाने के लिए, फटिक को चाहिए था कि तुरन्त उसके गाल पर कस कर थप्पड़ जड़ दे। पर ऐसा करने की हिम्मत नहीं हुई। ऊपर से उसने ऐसा किया नहीं, क्योंकि उसके दिमाग में पहले से भी एक और बढ़िया खेल की बात आ गई थी। इस खेल में और भी आनन्द था। उसने प्रस्ताव दिया कि बच्चे मक्खन के साथ ही इस तने को ठेल कर ले जाएं।

मक्खन ने सोचा, तने पर जम कर बैठे रहने से उसका मान बढ़ेगा। पर हर मान के साथ कुछ विपत्ति की भी आशंका रहती है, यह बात न उसके और न ही दूसरे बच्चों के दिमाग में आई।

लड़के कमर कसकर पेड़ के उस मोटे-से तने को मिल कर ठेलने लगे... मारो धक्का, हईया, शाबाश, जवानों, हईया...। फिर तना जैसे ही थोड़ा लुढ़का, मक्खन अपनी सारी गंभीरता, मान और तत्वज्ञान के समेत जमीन पर लुढ़क पड़ा।

खेल के शुरू में ही इस तरह का आशातीत फल पाकर बच्चे बड़े खुश हुए, पर फटिक कुछ परेशान हो उठा। मक्खन तुरन्त जमीन पर से उठा और फटिक पर सवार होकर उसे अंधाधुंध पीटने

लगा। उसका नाक-मुंह नोच-नाच कर रोते-रोते घर की तरफ चला गया। उस दिन का खेल खत्म हो गया।

फटिक कास के कुछ डंठल तोड़कर घाट पर बंधे एक नाव पर बैठा-बैठा डंठल चबाता रहा। उसी समय एक परदेसी नाव घाट पर आकर रुकी। एक अधेड़ उम्र के सज्जन जिनकी दाढ़ी तो कच्ची थी पर सिर के बाल पक चुके थे, नाव से उतरे। उन्होंने फटिक से पूछा, ''चक्रवर्ती महाशय का मकान कहां है?'' फटिक ने कास का डंठल चबाते हुए दिखाया, ''वो वहां रहा। '' फिर उसने सचमुच किस तरफ इशारा किया, यह किसी की समझ के बाहर की बात थी। उन सज्जन ने फिर पूछा, ''किस तरफ?'' फटिक ने कहा, ''नहीं मालूम'' कह कर पहले की तरह डंठल का रस चूसने में लग गया। वह सज्जन दूसरे लोगों से पूछताछ कर चक्रवर्ती के घर पहुंचे।

इसके थोड़ी देर बाद बाघा आकर बोली, ''फटिक भैया, मां बुला रही है।''

फटिक बोला, "नहीं आऊंगा।"

बाघा जबर्दस्ती उसे गोद में उठा कर ले गई। फटिक अपने को छुड़ा नहीं सका, इसलिए गुस्से से अपने हाथ-पैर पटकने लगा।

फटिक को देखते ही उसकी मां उस पर बरस पड़ी। बोली, "तूने फिर मक्खन को मारा है?"

फटिक बोला, "नहीं। मैंने नहीं मारा।"

"फिर झूठ बोल रहा है?"

"मैंने नहीं मारा है। मक्खन से पूछकर देखो।"

मक्खन, जो पहले ही चुगली कर चुका था, पूछने पर बोला, "हां इसने मुझे मारा है।"

यह फटिक से सहा नहीं गया। झट जाकर मक्खन को कसकर एक थप्पड़ जमाते हुए बोला, "फिर झूठ बोलता है।"

मां ने मक्खन की तरफदारी करके फटिक को झकझोर कर उसकी पीठ पर कसकर दो-तीन धौल जमा दिए। फटिक ने मां को धक्का दिया।

मां चिल्लाकर बोली, "ए, तू मां पर हाथ उठाता है।"

ठीक उसी समय वह कच्चे-पके बालों वाले सज्जन वहां आ पहुंचे और बोले, "यह क्या कर रहे हो तुम लोग?"

उन्हें देखते ही फटिक की मां खुशी से उछल पड़ी। अवाक होकर बोली, "अरे यह तो भैया हैं। कब आए भैया?" कहकर उसने भाई को प्रणाम किया।

बहुत दिनो से भैया रोज़गार की तलाश में पश्चिम की तरफ चले गए थे इस बीच फटिक की मां को दो बच्चे हुए। वे बच्चे काफी बड़े हो गए। उसके पति का देहान्त हो चुका था, पर भैया से उसकी मुलाकात नहीं हो सकी थी। आज बहुत सालों बाद घर लौटकर विश्वंभर बाबू अपनी बहन को देखने आए थे।

कुछ दिन तो बड़ी धूमधाम के साथ बीते। अन्त में विदा लेने के एक दो दिन पहले विश्वंभर बाबू ने अपनी बहन को बुलाकर बच्चों की पढ़ाई और उनके मानसिक विकास के बारे में कुछ पूछताछ की। इसके जवाब में फटिक के उद्दण्ड आचरण, पढाई में मन न लगाने और मक्खन के बड़ा शान्त भला, पढ़ने-लिखने वाला लड़का होने की बात उन्हें बताई गई।

उनकी बहन ने कहा, "फटिक ने मुझे तंग कर छोड़ा है।"

यह सुनकर विश्वंभर बाबू बोले, "मैं फटिक को कलकत्ते में अपने पास रखकर पढ़ाऊगां-लिखाऊंगा।"

विधवा बहन ने भाई का यह प्रस्ताव मान लिया।

माँ ने फटिक से पूछा, ''क्यों रे फटिक,

मामा के साथ कलकत्ता जाएगा''।

फटिक उछल पड़ा। बोला, ''जाऊंगा।''

यद्यपि फटिक को विदा करने में मां को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं थी, क्योंकि उसके मन में हमेशा भय बना रहता कि क्या पता किसी दिन फटिक मक्खन को पानी में ही न धकेल दें, या कभी उसका सिर ही न फोड़ दे, या फिर और कोई दुर्घटना घटा दे, फिर भी फटिक के मन में जाने के लिए इस प्रकार की उत्सुकता देखकर मन ही मन वह थोड़ी खिन्न हुई।

''कब जाएंगे, किस समय जाएंगे?'' पूछ-पूछ कर फटिक ने अपने मामा को तंग कर दिया। उत्साह के मारे उसे रात को नींद नहीं आ रही थी।

अन्त में चलते समय अपने आनन्द के प्रतीक स्वरूप उसने अपनी मछली पकड़ने की बंसी, पतंग, लटाई सारा कुछ मक्खन को तथा उसके पोते, परपोते तक को उस सम्पत्ति का भोग करने का पूरा अधिकार सौंप दिया।

कलकत्ते में मामा के घर जाकर सबसे पहले उसका परिचय मामी से हुआ। परिवार में एक आदमी बढ गया, इस बात से मामी बड़ी खुश हुई हो, ऐसा नहीं कह सकते। वह अपने तीन लड़कों को लेकर अपनी मर्ज़ी मुताबिक घर बसाकर रह रही थी। इस बीच अचानक तेरह साल के अपरिचित अशिक्षित, गंवार लड़के को लाने पर घर में किस तरह आन्दोलन की संभावना हो सकती है, विश्वंभर में यदि ज़रा भी बुद्धि होती, तो इसका अंदाज कर वह लड़के को घर में लाते ही नहीं।

तेरह-चौदह साल के लड़के की तरह की बला शायद दुनिया में और कोई नहीं है। उससे न तो घर की कोई शोभा बढ़ती है, न ही वह किसी के काम आता है। उसे देखकर न तो मन में स्नेह आता है, और न ही उसका साथ किसी को अच्छा लगता है। उसकी जबान से बाल-सुलभ बातें बनावटी लगती हैं, और बड़ी-बड़ी बातें सुनकर लगता है वह सयाना हो चुका है। वह कुछ भी बोलें, लगता है बड़ा बातूनी है। कपड़े-लत्ते में न अंट कर वह एकाएक बढ़ जाता है, लोग इसे भी उसी की गलती मानते है। उसके बचपन का लालित्य और आवाज की मधुरता एकाएक गायब हो जाती है। लोग मन ही मन सभी प्रकार की गड़बड़ी के लिए उसे ही दोषी ठहराते हैं। बचपन और जवानी के बहुत से अपराधों को माफ किया जा सकता है, पर इस समय कोई स्वाभाविक अनिवार्य त्रुटि भी असहनीय सी लगने लगती है।

इस उम्र का बच्चा भी मन ही मन समझ जाता है कि वह दुनिया में कहीं भी फिट नहीं हो रहा है। इसलिए वह हमेशा लज्जित और क्षमाप्रार्थी बना रहता है, हालांकि इस उम्र में उसका मन थोड़ा-सा भी प्यार पाने के लिए आतुर रहता है। इस समय अगर उसकी किसी के साथ दोस्ती होती है या वह किसी

का स्नेह पाता है तो उसके लिए वह अपने को बेच तक देता है। पर इस समय उसे कोई स्नेह भी नहीं देना चाहता, क्योंकि लोग इसे उसका मन बढ़ाना समझ बैठते हैं। इसलिए इस उम्र के बच्चे का चेहरा और उसके भाव कुछ-कुछ लावारिस कुत्ते के समान होते हैं।

इसी वजह से मां को छोड़कर कोई दूसरी अपरिचित जगह बच्चे के लिए नरक के समान होती है। उसके प्रति चारों तरफ का स्नेहहीन वातावरण उसे रह पल कांटे की तरह चुभता है। इस उम्र में लड़के को आम तौर पर कोई भी स्त्री स्वर्गलोक की परी की तरह दुर्लभ जीव मालूम होने लगती है, इसलिए उसकी तरफ से अपेक्षा उसके लिए अत्यंत असहनीय हो उठती है।

मामी की स्नेहहीन आंखों में फटिक भी एक बला के समान था, इससे फटिक के मन को बड़ी ठेस पहुंचती थी। मामी अगर भूल से भी कोई काम करने के लिए उसे कहती तो वह खुशी के मारे जितना उसे कहा जाता, उससे अधिक काम करता था और उसके उत्साह को बुझाने के लिए जब मामी कहती, "बहुत खूब! बहुत खूब! अब तुम्हें हाथ लगाने की जरूरत नहीं। अब अपने काम में मन लगाओ", तब फटिक को अपने प्रति दर्शाया गया मामी का प्यार बड़ा निष्ठुर-सा लगता।

घर में इतना निरादर, उस पर वह जगह इतनी छोटी। खुली हवा में सांस लेने का कोई उपाय नहीं था। दीवारों के बीच घुट कर उसे बार-बार अपना गांव याद आता। बड़ी-सी एक पतंग लेकर मैदान में दौड़कर उसे उड़ाना, उसके बाद खुद का रचा हुआ गाना ऊंची आवाज़ में गाते हुए अलसाए ढंग से नदी के किनारे घूमना और फिर जब मर्जी, नदी में कूदना सब कुछ उसे बेहद याद आता। छोटी-सी नदी में तैरने में क्या मज़ा आता था। वे सारे लड़के, उसका वह अपना दल, उपद्रव मचाने की आज़ादी और सबसे ऊपर उसकी अत्याचारिन, कठोर मां, सब कुछ दिन-रात उसके निरुपाय मन को अपनी तरफ खींचते रहते।

जानवर की तरह एक नासमझ प्यार, सिर्फ पास जाने की एक आतुर इच्छा, न देख पाने के कारण एक अव्यक्त व्याकुल भाव-गोधूलि बेला में मातृहीन बछड़ा जिस तरह स्नेहातुर भाव से मां, मां पुकारता गो मां के

पीछे भागता है – उसी तरह उस शर्मीले, सदा संकुचित दुबले-लम्बे, बदसूरत बालक का मन भी आलोड़ित होता रहता था।

स्कूल में फटिक की तरह बेवकूफ और पढ़ने में लापरवाह लड़का दूसरा कोई न था। कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर वह मुंह फाड़े देखता रहता। जब मास्टर उसे मारता तो बोझ से लदे गधे की तरह वह चुपचाप मार खाता। बच्चों को जब खेलने की छुट्टी मिलती, वह खिड़की के पास खड़ा दूर बनी छतों की तरफ एकटक देखता रहता। जब दोपहर की धूप में किसी-किसी छत पर एकाध बच्चा थोड़ी देर के लिए दिखाई पड़ता तो फटिक का मन उससे खेलने के लिए चंचल हो उठता था।

एक दिन मन ही मन प्रतिज्ञा कर और बहुत हिम्मत जुटाकर उसने मामा से पूछा, ''मामा जी, मा के पास कब जाऊंगा?''

मामा ने कहा, ''स्कूल की छुट्टी हो जाएगी, फिर चलेंगे।''

कार्तिक के महीने में दशहरे की छुट्टी होने लगी थी। पर उसमें तो अभी बड़ी देर थी।

एक दिन फटिक ने अपने स्कूल की किताब खो दी। एक तो वह ऐसे भी आसानी से पाठ नहीं तैयार कर पाता था, उस पर से किताब खोकर उसे अपना हाल और भी बुरा बना लिया। मास्टर ने हर रोज उसे पीटना शुरू कर दिया। स्कूल में उसकी यह हालत हो गई कि उसके ममेरे भाई उसे अपना रिश्तेदार बताने में संकोच करने लगे। फटिक पर लगाए गए किसी प्रकार के लांछन पर दूसरे बच्चों से अधिक खुशी उसके ममेरे भाई ही मनाते।

जब स्कूल में जाना एक प्रकार से मुश्किल हो उठा, तब एक दिन फटिक अपनी मामी के पास आकर अपराधी की तरह बोला, ''मेरी किताब खो गई है।'' मामी होंठ बिचका कर नाराज़गी से बोली, ''अच्छा ही किया। महीने में पांच बार मैं तुम्हें किताबें खरीद कर नहीं दे सकती।''

फटिक कुछ बोले बिना वहां से चला आया... वह दूसरे के पैसे बर्बाद कर रहा है, यह सोच कर अपनी मां के प्रति दुख से उसका मन भर आया। हीनता और दरिद्रता के भाव से उसका सिर मिट्टी में झुक गया।

स्कूल से लौटकर उसी रात उसके सिर में दर्द होने लगा। शरीर में कंपकंपी-सी होने लगी। वह समझ गया कि उसे बुखार आने वाला है, साथ ही यह भी समझ गया कि उसका बीमार पड़ना खामखाह मामी पर बोझ डालना होगा। मामी उसकी इस बीमारी को बिना कारण अपने पर जुल्म ढोना समझ कर मन ही मन उसे कोसेगी। बीमारी के समय इस अकर्मण्य और निर्बोध बालक की सेवा दुनिया में अपनी मां के सिवा कोई और करेगा, इसकी संभावना ने ही उसे शर्मिन्दा बना दिया।

× ×

दूसरे दिन सुबह फटिक कहीं नहीं दिखाई पड़ा। चारों तरफ पड़ोसियों से पूछताछ करने पर भी उसका अता-पता नहीं लगा।

उस दिन रात से ही लगातार सावन की बरसात हो रही थी। फटिक को खोजने के लिए वे लोग भीगते रहे। अन्त में जब फटिक कहीं भी नहीं मिला तो विश्वंभर बाबू ने पुलिस को खबर की।

सारा दिन बीत गया। शाम को विश्वंभर बाबू के घर के सामने पुलिस की एक जीप आकर खड़ी हुई। उस समय भी लगातार झिर-झिर पानी बरस ही रहा था। सड़क घुटने तक पानी में डूब गई थी।

पुलिस के दो आदमियों ने फटिक को पकड़ कर गाड़ी से उतारा। फटिक सिर से पैर तक भीगा हुआ था। उसके सारे शरीर में कीचड़ लगा हुआ था, आंख-मुंह लाल हुए पड़े थे। वह थर-थर कांप रहा था। विश्वंभर गोद में भरकर उसे अन्दर ले गए।

फटिक को देखते ही मामी बोल पड़ी, ''क्यों भई! पराए लड़के के लिए हम क्यों मुसीबत मोल लें, उसे उसके घर भेज दो।''

सचमुच सारे दिन दुश्चिन्ता के मारे उसने अच्छी तरह खाया भी नहीं था। अपने साथियों के साथ भी खिट खिट हो गई थी।

फटिक रोता हुआ उठ बैठा। बोला, ''मैं मां के पास जा रहा था। ये लोग पकड़ कर वापस ले आए हैं।''

बच्चे का बुखार बढ़ता ही जा रहा था। वह सारी रात बड़बड़ाता रहा। विश्वंभर बाबू डाक्टर को बुलाकर ले आए।

फटिक ने अपनी लाल-लाल आंखें छत की तरफ देखते हुए खोली, फिर बोला, ''मामा जी, मेरे स्कूल में छुट्टी हो गई है क्या?''

विश्वंभर बाबू रुमाल से आंसू पोंछकर स्नेह से फटिक के बुखार से तपे हाथ को अपने हाथों में लेकर उसके करीब जाकर बैठे। फटिक फिर कुछ बड़बडाने लगा। ''मां मुझे मत मारना मां। मैं सच कह रहा हूं, मैंने कोई गलती नहीं की।''

दूसरे दिन, दिन में थोड़ी देर के लिए फटिक को होश आया। किसी को देखने की उम्मीद में वह कमरे के चारों तरफ अर्थहीन दृष्टि से देखता रहा । फिर निराश होकर चुपचाप दीवार की तरफ मुंह फेरकर सो गया।

उसके मन के भाव को पढ़कर विश्वंभर बाबू फटिक के कान के पास झुककर बोले, ''फटिक, तुम्हारी मां को लिवा लाने के लिए मैंने आदमी भेज दिया है।''

दूसरा दिन भी बीत गया। डाक्टर चिन्तित और उदास होकर बोले, ''हालत गम्भीर है।''

धीमी रोशनी में विश्वंभर बाबू फटिक के सिरहाने बैठकर हर पल उसकी मां के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

फटिक खलासियों के तरह बकने लगा, "एक घुमान नहीं मिला। दो घुमाव नहीं मि... ला...।" कलकत्ते आते समय उसे थोड़ा रास्ता स्टीमर से तय करना पड़ा था। उसने देखा था कि खलासी लोग रस्सी फेंक कर पानी नापते थे और सुर में नाम पुकारते थे।

बुखार में फटिक उन्हीं खलासियों की नकल कर पानी नाप रहा था। जिस अथाह समुद्र में वह जा रहा था, उसकी गहराई की थाह उसका बाल-मन रस्सी डालकर नाप नहीं पा रहा था।

ठीक उसी समय फटिक की मां आंधी की तरह कमरे में घुसते ही ज़ोर से रोने लगी। विश्वंभर बाबू ने बड़ी मुश्किल से उसे चुप कराया। फटिक की मां फटिक के बिस्तर पर गिरकर ऊंची आवाज़ में रो-रोकर कह रही थी, फटिक! सोना, माणिक मेरे!"

फटिक मानों बड़ी आसानी से उसके जवाब में बोला, "क्या?"

मां बोली "बेटा फटिक, मेरे अच्छे बच्चे।"

फटिक ने धीरे से करवट बदली, फिर किसी की तरफ देखे बिना धीरे से बोला, "मां, मेरी छुट्टी हो गई है मां, मैं अब घर जा रहा हूं।"

पोस्टमास्टर

नई नौकरी में पोस्टमास्टर की नियुक्ति उलापुर गांव में हुई। मामूली-सा एक गांव। गांव के पास ही एक नील की कोठी थी। कोठी के साहब ने बडी कोशिश करके यहां यह नया डाकखाना खुलवाया था।

हमारे यह पोस्टमास्टर कलकत्ते के थे। मछली को पानी से निकाल कर यदि जमीन पर रख दिया जाए तो उसकी जो दशा होती है, वही दशा उस बीहड़ गांव में पहुंचकर पोस्टमास्टर की हुई। एक अंधेरी-सी खपरैल झोंपड़ी में उनका डाकखाना था; थोड़ी दूर पर काई और जंगली पत्तों से भरा हुआ एक ताल था, और ताल के चारों ओर पेड़-पौधों का जंगल। कोठी के जो गुमाश्ते वगैरह थे, उनके पास फुर्सत नहीं थी, और पोस्टमास्टर जैसे भद्र लोगों से मिलने लायक वे थे भी नहीं।

विशेष बात तो यह है कि कलकत्ता निवासी वैसे भी किसी से अच्छी तरह मेल-जोल नहीं बढ़ा पाते। अनजान जगहों पर पहुंच कर या तो वे उद्दंड हो जाते हैं, या फिर सहमे-सहमे से रहते हैं। इस वजह से स्थानीय लोगों से उन्हें मेल-जोल का मौका नहीं मिलता। यों तो पोस्टमास्टर के हाथ में काम कुछ अधिक नहीं था। कभी-कभी वह एकाध कविता लिखने की कोशिश करते। उन कविताओं का भाव ऐसा होता-लगता है, सारे दिन पेड़-पत्तियों के झकोरों और आकाश के बादलों को देखकर समय बड़ा सुखद बीतता है, ...पर अन्तर्यामी ही जानता है कि यदि अरबी उपन्यास का कोई दानव आकर रातोंरात सारे पेड़-पौधों को काट कर पक्की सड़क बना दे, ओर कतार से बने बड़े-बड़े मकान आकाश के बादलों को आंखों से ओझल कर दें, तो अधमरे-से इस भद्र पुरुष को शायद नया जीवन मिल जाए।

पोस्टमास्टर का वेतन बहुत कम था। खाना खुद बना कर खाते थे, और गांव की ही एक अनाथ बच्ची झाड़ू लगाने, बर्तन मांजने और कपड़े साफ़ करने आदि के बाकी काम कर जाया करती थी। बदले

में उसे सिर्फ खाना मिलता था। लड़की का नाम था रतन। यही कोई बारह-तेरह साल की रही होगी। शादी-वादी होगी, इसकी कोई खास संभावना दिखाई नहीं दे रही थी।

शाम के समय जब गांव के गोशालों से धुआं निकलने लगता, झाड़ियों में झिंगुर बोलने लगते, दूर किसी गांव में नशे में धुत बाऊल ढोल-करताल बजा कर ऊंची आवाज में गाने लगते, जब अंधकारमय बरामदे में अकेला बैठा-बैठा पेड़ की पत्तियों के झकोरों को देख कर कोई कवि-हृदय भी कांप-सा जाता है, तब कमरे के कोने में एक क्षीण दीया जलाकर पोस्टमास्टर पुकारते – 'रतन' ।

रतन दरवाजे के बाहर इस पुकार के लिए बैठी रहती, पर एक पुकार से वह कमरे के अन्दर नहीं जाती थी। कहती, ''क्यों बाबू? बुला रहे हो? क्यों?''

पोस्टमास्टर कहते, ''तू क्या कर रही है?''

रतन बोलती, ''अभी चूल्हा सुलगाने जा रही हूं। रसोई...।''

पोस्टमास्टर कहते, ''रसोई का काम बाद में कर लेना, पहले जरा हुक्का तैयार कर दे।''

थोड़ी ही देर में रतन अपने दोनों गालों को फुलाकर हुक्के में फूंक मारती कमरे में पहुंचती थी।

पोस्टमास्टर उसके हाथ से हुक्का लेते हुए एकाएक पूछते, ''अच्छा रतन, तेरी मां तुझे याद आती?''

''वो तो बड़ी पुरानी बातें है। कुछ याद हैं, कुछ नहीं भी।''

रतन को मां से अधिक उसका बाप प्यार करता था। अपने पिता की बात उसे थोड़ी-थोड़ी याद थी। पूरे दिन खट कर शाम को बाबू घर लौटता था। एक-दो शाम की बात तो उसे साफ-साफ याद थी। घर की बातें करते-करते रतन धीरे से पोस्टमास्टर के पैर के पास बैठ जाती। उसे याद आता कि उसका एक छोटा-सा भाई भी था... बहुत पहले एक बरसाती दिन को दोनों भाई-बहन एक नहर के किनारे खेल रहे थे। दोनों पेड़ की डाल की बंसी बनाकर मछली पकड़ने का खेल-खेलते हुए हुड़दंग मचा रहे थे... अन्य बड़ी बातों से अधिक यही बात उसे ज्यादा याद आया करती थी।

इस तरह से बातचीत होते-होते कभी-कभी काफी रात हो जाती थी। तब इतना आलस छा जाता था कि पोस्टमास्टर को खाना बनाने का मन नहीं करता था। सुबह की कोई सब्जी बनी रहती और रतन झटपट चूल्हा सुलगा कर रोटिया बना देती थी। फिर दोनों मिलकर वहीं खा लेते थे।

किसी-किसी दिन शाम को उस बड़े से झोंपड़े में दफ्तर की कुर्सी पर बैठ कर पोस्टमास्टर अपने घर की बात छेड़ते – छोटा भाई, दीदी और मां की बात बताते हुए उनका अपना मन व्यथित हो उठता था। उन लोगों के लिए उनका मन हमेशा उदास हो जाता, पर नील कोठी के गुमाश्तों को यह बात बताई नहीं जा सकती थी। पर ये बातें पोस्टमास्टर एक निरक्षर नन्हीं-सी बच्ची को अनायास ही बता जाते।

उन्हें जरा भी संकोच नहीं होता था। अन्त में बातचीत के दौरान नन्हीं रतन भी पोस्टमास्टर के घर के लोगों को 'मां, दीदी और भैया' कह कर चिर-परिचित की तरह बातें किया करती थी। यहां तक कि अपने छोटे-से हृदय में उस बालिका ने उन लोगों की एक काल्पनिक मूर्ति भी बना ली थी।

बरसात के किसी एक दिन आकाश बिल्कुल साफ था, दोपहर में थोड़ी गर्म मीठी हवा चल रही थी। धूप में सिकी हुई भीगी घास और पेड़-पौधों से एक खास किस्म की सुगंध आ रही थी। लग रहा था थकी हुई धरती की गर्म सांस शरीर को छू रही है। कहीं की कोई जिद्दी चिड़िया लगातार अपनी चहचहाट से अपनी शिकायत इस भरी दुपहरी में प्रकृति के दरबार में बड़े करूण भाव से बार-बार पेश कर रही थी।

पोस्टमास्टर के हाथ में कोई काम नहीं था। उस दिन की बारिश में धुले हुए पेड़ों की चिकनी पत्तियों के झकोरे और हारी हुई बरसात के टूटे बादल के टुकड़े जो धूप से धुल कर उजले हो गये थे, देखने लायक थे: पोस्टमास्टर यह शोभा देख रहे थे – काश! इस समय कोई अपना पास में होता। मन के साथ जुड़ा हुआ और कोई स्नेही जन, कोई मानव-मूर्ति। धीरे-धीरे उन्हे लगा, वह चिड़िया भी बार-बार यही कह रही है, और मानवहीन पेड़ों की छाया से घिरी दुपहरी की हवा भी यही कह रही है... काश! कोई अपना होता जो इस समय पास होता। कोई विश्वास नहीं करेगा, किसी को मालूम भी नहीं होगा कि इस छोटे से गांव के मामूली तनख्वाह पाने वाले सब-पोस्टमास्टर के मन में इस निस्तब्ध दुपहरी में छुट्टियों के दिन इस तरह के भाव उठा करते हैं।

एक लम्बी सांस खींचते हुए पोस्टमास्टर ने पुकारा, 'रतन'।

रतन उस समय अमरूद के पेड़ के नीचे पैर फैलाकर अमरूद चबा रही थी। मालिक की आवाज सुनते ही दौड़ी हुई आई। हांफती हुई बोली, ''भैया बाबू आप मुझे पुकार रहे हैं?''

पोस्टमास्टर बोले, ''तुझे मैं थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ाऊंगा, समझी?'' और उसके बाद सारी दुपहरी ऊंची आवाज में वह रतन को 'अ', 'आ' सिखाने लग गए। और इस तरह से थोड़े ही दिनों में रतन संयुक्ताक्षर तक पढ़ना सीख गई।

सावन का महीना था। बारिश बन्द ही नहीं हो रही थी। सारे ताल और नाले पानी से भर गए थे। पूरे दिन मेंढ़क की आवाज और बारिश की रिमझिम सुनाई पड़ती रहती थी। गांव की सड़कें, पगडंडियां एक प्रकार से बन्द ही हो गई थी। लोग नाव से हाट जाकर सौदा-सुलुफ करते थे।

एक दिन सुबह से बादल छाए हुए थे। पोस्टमास्टर की छात्रा काफी-देर से दरवाजे पर प्रतीक्षा में बैठी हुई थी, पर और दिनों की तरह अपनी बुलाहट न सुनकर अपनी स्लेट-पेन्सिल और किताब लिए धीरे-धीरे कमरे के अन्दर चली आई। रतन ने देखा – पोस्टमास्टर अपने खटिया पर लेटे हुए हैं। 'आराम कर रहे होंगे', सोचकर रतन चुपके-से कमरे के बाहर निकल जाना चाहती थी, पर एकाएक उसे सुनाई पड़ा – रतन?''

रतन ने झटपट पलट कर पूछा, ''भैया बाबू, आप सो रहे थे?''

पोस्टमास्टर उदास होकर बोले, "तबियत ठीक नहीं लग रही है। ज़रा सिर पर हाथ रख कर देख तो।"

इस एकांत संगीविहीन प्रवास में घोर बरसात के अजीब से सूनेपन में रोग-कातर पोस्टमास्टर का शरीर थोड़ी सेवा चाह रहा था। ज्वर से तपते कपाल पर स्नेहमयी नारी रूप में मां और दीदी के शंख की चूड़ी डाली हुई कोमल हाथों का स्पर्श पाने की इच्छा हो रही थी। उनका स्नेहस्पर्श पाने के लिए पोस्टमास्टर का प्रवासी मन आतुर हो उठा और, उस प्रवासी हृदय की अभिलाषा व्यर्थ भी नहीं हुई? रतन अब बालिका नहीं रही थी। उसी क्षण उसने पोस्टमास्टर की मां के आसन पर अधिकार कर लिया। वह कविराज को बुला लाई, समय पर दवा देती रही और सारी-सारी रात रोगी के पास बैठी जागती रही। पथ्य भी उसने अपने हाथों से बनाकर खिलाया, और सैकड़ों ही बार पूछा, "हां तो भैया बाबू, अब तबियत थोड़ी ठीक तो लग रही है न?"

बहुत दिनों के बाद पोस्टमास्टर बड़ी ही कमजोरी की स्थिति में बिस्तर से उठे और मन ही मन निश्चय किया कि मैं अब यहां और नहीं रहूंगा, किसी भी तरह यहां से अपनी बदली करवा लूंगा।

"यहां का हवा-पानी ही खराब है, मुझे तुरन्त तबादला चाहिए", यह लिखकर पोस्टमास्टर ने ऊपर वालों के यहां अपनी दरख्वास्त भेज दी।

रोगी की सेवा से छुटकारा पाने के बाद रतन फिर से दरवाजे के बाहर अपनी जगह पर आकर बैठने लगी। लेकिन न मालूम क्यों, पहले की तरह अब उसकी बुलाहट नहीं आती। कभी-कभी वह छिपकर कमरे के अन्दर झांकती तो देखती कि पोस्टमास्टर अनमने से अपनी खटिया पर लेटे हुए है। रतन बुलाहट की प्रतीक्षा में बैठी रहती और पोस्टमास्टर अधीर मन से अपने तबादले के लिए दिए हुए दरख्वास्त के उत्तर की प्रतीक्षा करते होते। दरवाजे के बाहर बैठ कर वह बच्ची पुराना पाठ ही बार-बार पढ़ती, ताकि अगर किसी भी दिन पोस्टमास्टर बुलाएं तो वह ठीक-ठीक उन्हें पाठ सुना सके। अन्त में करीब एक सप्ताह के बाद शाम को उसकी बुलाहट आई।

उद्वेलित मन से रतन कमरे में आई और पूछा, "भैया बाबू, मुझे बुला रहे थे?"

पोस्टमास्टर बोले, "रतन मैं कल यहां से जा रहा हूं।"

रतन बोली, "कहां जा रहे हो भैया बाबू?"

पोस्टमास्टर बोले, "घर जा रहा हूं?"

"फिर कब आओगे?" रतन ने पूछा।

पोस्टमास्टर बोले, "लौट कर फिर नहीं आऊंगा।"

रतन ने कुछ नहीं पूछा।

पोस्टमास्टर खुद ही बोले, "मैंने तबादले के लिए अर्जी दी थी, पर मेरी अर्जी नामंजूर कर दी गई है, इसलिए अब काम छोड़कर जा रहा हूं।"

बहुत देर किसी ने कुछ न कहा। टिमटिमा कर दिया जल रहा था, और कमरे के किसी कोने में मिट्टी के बर्तन में छत से पानी चू-चू कर जमा हो रहा था।

थोड़ी देर बाद रतन धीरे से उठी और रसोईघर में जाकर रोटी बनाने लगी। पर आज और दिनों की तरह वह झटपट नहीं बना पाई। शायद उसके दिमाग में तरह-तरह की बातें उठ रहीं थी। पोस्टमास्टर के खाना खा लेने के बाद रतन उनसे बोली, "भैयाा बाबू, मुझे अपने घर ले चलोगे?"

पोस्टमास्टर हसकर बोले, "यह कैसे हो सकता है?" पर वह उसे क्यों नही ले जा सकते, उस बात को समझाना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा।

सारी रात स्वप्न में और जागृत अवस्था में उस बच्ची के कान में पोस्टमास्टर की हसती आवाज गूंजती रही, "यह कैसे हो सकता है?"

सुबह उठ कर पोस्टमास्टर ने देखा, हमेशा की तरह उनके स्नान के लिए पानी रखा हुआ है। कलकत्ते की आदत के अनुसार वह बाल्टी में रखे पानी से नहाते थे, तालाब के से नहीं। पोस्टमास्टर कब रवाना होंगे – यह न जाने क्यों बालिका पूछ नहीं सकी थी। कहीं सुबह उठते ही उन्हें पानी की जरूरत पड़े, इसलिए उतनी रात को ही रतन नदी से पानी भर लाई थी। नहाने के बाद पोस्टमास्टर ने रतन को बुलाया। रतन चुपचाप कमरे में आई।

पोस्टमास्टर बोले, "रतन, मेरी जगह जो आदमी आएगा, उससे मैं कह कर जाऊंगा, कि वह मेरी ही तरह प्यार से तेरा ख्याल रखे। मैं जा रहा हूं, इसके लिए तू चिन्ता मत करना।"

ये बातें पोस्टमास्टर ने बहुत ही स्नेह और दया-भाव से कही थी, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर नारी हृदय को कौन समझा सकता है? रतन ने कई बार मालिक की कड़वी डांट चुपचाप सह ली थी, पर उनके ये नर्म शब्द वह नहीं सह पाई। आकुल होकर बोली, "आपको किसी से कुछ भी कहने की जरूरत नहीं। मैं रहना नहीं चाहती।"

रतन का ऐसा व्यवहार पोस्टमास्टर ने कभी नहीं देखा था। वह आश्चर्यचकित रह गए।

नए पोस्टमास्टर आए। काम-काज का सारा भार उन्हें सौंपकर पुराने पोस्टमास्टर जाने के लिए तैयार हुए। जाने से पहले उन्होंने रतन को बुलाकर कहा, "रतन मैं तुझे कभी कुछ नहीं दे सका। अब जाने से पहले तुझे कुछ देकर जाऊंगां। इससे तेरे कई दिन चल जाएंगे।"

रास्ते के खर्च के लिए बचा कर पोस्टमास्टर ने अपनी पूरी तनख्वाह पॉकिट से निकाली। पर रतन ने जमीन पर बैठकर पोस्टमास्टर के पैर पकड़ लिए। बोली, "तुम्हारे पांव पड़ती हूं। मुझे कुछ मत दो। मेरे लिए किसी को कुछ सोचने की जरूरत नहीं"... कह कर वह दौड़ती हुई भाग गई।

पोस्टमास्टर, लम्बी सांस लेकर, हाथ में कार्पेट का बैग लटका कर, कन्धे पर छाता रख कर, कुली के माथे पर नीले और सफेद रंग की चित्रकारी से सजे टीन के बक्से को रखवा कर, नाव की तरफ बढ़े।

जब नाव खुली, तब बरसात की करूणा से भरी नदी, धरती के उच्छवसित आंसू की तरह, चारों तरफ छलक रही थी। पोस्टमास्टर के मन में वेदना की एक अजीब टीस-सी उठी। उन्हें लगा, गांव की

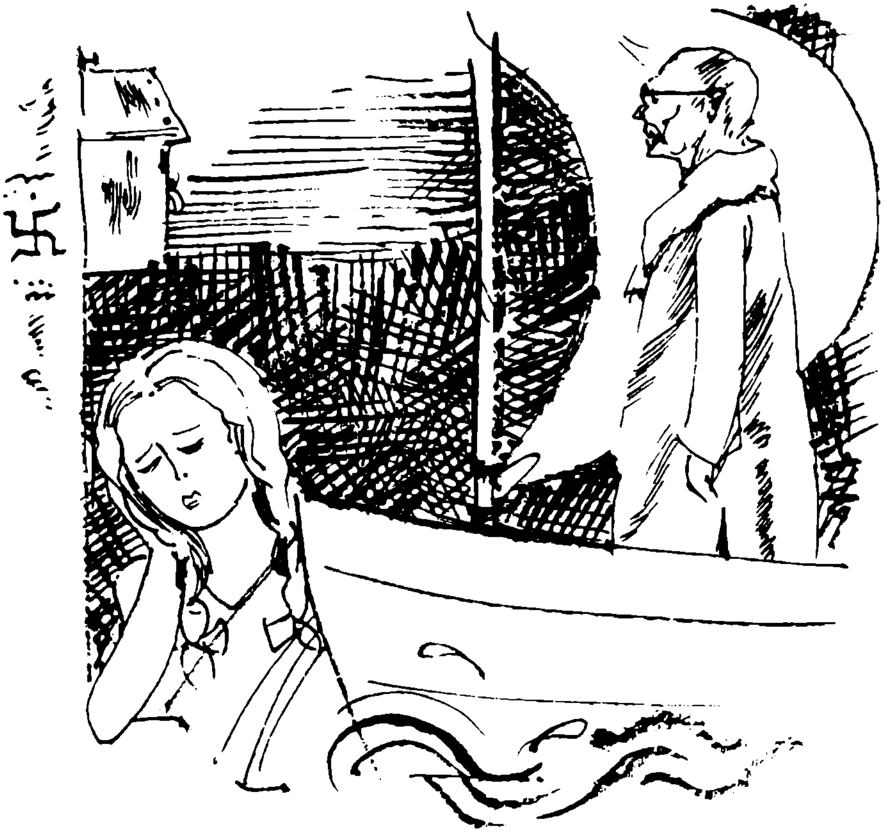

एक मामूली सी बच्ची का उदास चेहरा जैसे विश्वव्यापी किसी अव्यक्त मनोवेदना के रूप में छा गया हो। उनकी एक बार बड़ी इच्छा हुई कि वह लौट चलें और दुनिया की गोद से उखड़ी हुई उस अनाथ बच्ची को साथ ले आएं... पर तब तक नाव के पाल में हवा पड़ चुकी थी। बरसाती वेग से नाव ने तेज गति पकड़ ली थी। गांव के बाद नदी के किनारे का श्मशान दिखाई देने लगा था। नाव पर बैठे नदी में तिरते हुए राही के उदास मन में तत्व की एक बात उठी। उसने सोचा... 'जीवन में इस तरह के कितने ही विच्छेद और मृत्यु के पल आएंगे।' लौटने से क्या फायदा? आखिर इस दुनिया में कौन किसका है?

पर रतन का अपना कोई जीवन-दर्शन नहीं था। उसकी उदास आंखें डबडबा आई थी। अपनी इसी स्थिति में वह पोस्ट ऑफिस के चारों ओर अनमस्क भाव से घूमती रही। शायद उसके मन में कहीं कोई क्षीण-सी आशा बची थी। शायद "भैया बाबू लौट आए।" उस बन्धन को तोड़ कर वह कहीं दूर भी नहीं जा पा रही थी।

हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय। भ्रम टूट कर भी नहीं टूटता। युक्ति या तर्क की बात बड़ी देर बाद दिमाग में घुसती है। पूर्ण प्रमाण के बावजूद हम, झूठी आशाओं को दोनों हाथों जकड़े रहते हैं, और अन्त में सारी रगों को काटकर, हृदय का सारा खून चूस कर जब कोई चला ही जाता है, तब भी एक बार फिर उसी भ्रम के बन्धन में जकड़ जाने के लिए मन व्याकुल हो उठता है।

काबुलीवाला

मेरी पांच साल की छोटी बिटिया मिनी एक मिनट भी बोले बिना नहीं रह सकती। एक साल की होते-होते वह बोलने लगी थी। तब से जब तक वह जगी रहती है एक क्षण भी चुप नहीं रहती। कई बार उसकी मां डांट कर उसे चुप करा देती है, पर मैं ऐसा नहीं कर पाता। मिनी चुप रहने पर मुझे इतनी अस्वाभाविक-सी लगती है कि मैं सह नहीं पाता। इसलिए मेरे साथ उसकी बातचीत जरा उत्साह से ही होती है।

सुबह मैंने अपने उपन्यास का सत्रहवां अध्याय लिखना शुरू ही किया था कि मिनी आकर बोली, ''पिताजी, रामदयाल दरबान काक को कौआ कह रहा था। वह कुछ नहीं जानता है। है न?''

दुनिया की विविध भाषाओं के बारे में उसे कुछ समझाता, इससे पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, ''देखिए पिताजी, भोला कह रहा था, हाथी आकाश पर अपनी सूंड से पानी फेंकता है, इसीलिए बरसात होती है। ओ मां! भोला इतना झूठ भी बोल सकता है? कितना बकता है! दिन रात बकता रहता है।''

इस मामले में मेरी राय की कुछ भी परवाह किए बिना वह एकाएक फिर बोली, ''पिताजी, मां आपकी क्या लगती है?''

मन ही मन मैंने कहा, ''साली लगती है;'' पर प्रकट रूप में कहा, ''मिनी तू अभी भोला के साथ खेलने जा। मुझे थोड़ा काम है।''

उस समय वह मेरे लिखने की मेज के पास मेरे पैर के करीब बैठ कर घुटने टेके बड़बड़ाती हुई 'आगडुम बागडुम' खेल रही थी। मेरे उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में उस समय प्रतापसिंह कंचनमाला को लेकर अंधेरी रात में कैदखाने की ऊंची खिड़की से नीचे नदी में कूद रहा था।

मेरा घर सड़क के किनारे था। खेलते-खेलते मिनी अचानक दौड़कर खिड़की के पास चली गई और चिल्लाकर बोली, ''काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला।''

मैले, ढीले-ढाले कपड़े पहने, सिर पर पगड़ी बांधे, कंधे पर झोला लटकाए, हाथ में दो-चार अंगूर के बक्से लिए, एक लम्बा-सा काबूलीवाला धीरे-धीरे सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी बिटिया के मन में क्या आया, कहना मुश्किल था, पर वह उसे जी-जान से बुलाने लगी। मैंने सोचा, 'झोला लटकाए यह बला सिर पर बस सवार हुई है' मेरा सत्रहवां अध्याय अब खत्म नहीं हो सकेगा।

मिनी की आवाज सुनकर काबुलीवाला ने जैसे ही हंस कर मुंह फेरा, और हमारे घर की तरफ आने लगा, वैसे ही मिनी बड़ी तेजी से अन्दर भाग गई। उसकी चोटी भी कहीं दिखाई नहीं पड़ी। उसके मन में एक अंधविश्वास रहा होगा कि काबुलीवाले के उस झोले में उसकी तरह के दो-चार बच्चे जरूर होंगे।

इधर काबुलीवाले ने आकर हंसकर सलाम किया। मैंने सोचा, 'प्रतापसिंह और कंचनमाला बड़े संकट में तो हैं, फिर भी किसी को बुला कर उससे कुछ भी नहीं खरीदना अच्छा नहीं लगता।'

मैंने थोड़ा-बहुत खरीदा। उसके बाद उससे दो-चार बातें भी हुई। रहमत रूस, अंग्रेजो तथा सीमा सुरक्षा नीति पर कुछ-कुछ मुझे बताता रहा। अन्त में जाते समय उसने पूछा, "बाबू, तुम्हारी लड़की कहां गई?"

मिनी के मन में निराधार भय निकालने के लिए मैंने उसे अन्दर से बुलवाया। वह मुझसे सटी हुई काबुलीवाले का चेहरा और उसके झोले की तरफ शंका-भरी दृष्टि से देख रही थी। काबुलीवाले ने अपने झोले से किशमिश के दाने और खुरमानी निकाल कर उसे दी। मिनी ने किसी भी तरह उससे कोई चीज नहीं ली। वह और भी डर और शंका से भरी घुटनों से टिक कर खड़ी रही। पहला परिचय इसी तरह से हुआ।

कुछ दिन बाद एक दिन सुबह-सुबह मैं किसी काम से घर से निकला ही था कि देखता क्या हूं कि मेरी बेटी दरवाजे के पास बनी बेंच पर बैठी अंटशंट बके जा रही है, और काबुलीवाला उसके पैरों के पास बैठ कर हंसता हुआ उसकी बातें सुन रहा है और बीच-बीच में टूटी-फूटी बंगला में अपनी बातें भी कहता जा रहा है।

मिनी को अपने पांच साल के जीवन में पिता के अलावा इतने धीरज से उसकी बातें सुननेवाला कोई और नहीं मिला था। फिर मैंने देखा, उसका छोटा-सा आंचल किशमिश और बादाम से भरा पड़ा है। मैंने काबुलीवाले से कहा, "उसे यह सब क्यों दिया?" इस तरह से फिर कभी मत देना।" इतना कह कर मैंने जेब से एक अठन्नी निकाल कर उसे दी। उसने भी बिना संकोच किए उस अठन्नी को अपने झोले में रख लिया।

घर लौट कर मैंने देखा कि उस अठन्नी को लेकर घर में बड़ा शोर मच रहा था। मिनी की मां उस अठन्नी को हाथ में लेकर मिनी से डपट कर पूछ रही थी, "यह अठन्नी तुझे कहां से मिली?"

मिनी बोली, "काबुलीवाले ने दी है।"

मिनी की मां फिर बोली, "काबुलीवाले से तूने पैसे क्यों लिए?"

मिनी रोती सूरत बना कर बोली, "मैंने नहीं मांगे थे। उसने अपने-आप ही दिए।"

मैंने आकर मिनी को विपत्ति से बचाया।

खबर मिली कि काबुलीवाले के साथं मिनी की यह दूसरी मुलाकात नहीं थी। इस बीच करीब रोज ही आकर और पिस्ते बादाम की घूस देकर, उसने मिनी के छोटे-से लोभी मन में अपने लिए काफी जगह बना ली थी।

मैंने देखा, इन दो दोस्तों के बीच हंसी-मजाक की दो-चार बातें हर बार ही होती हैं। रहमत को देखते ही मेरी लड़की हंस कर पूछती, ''काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले, तुम्हारे उस थैले में क्या है?''

रहमत एक अनावश्यक बिन्दु जोड़कर कहता, ''हाथी।''

अर्थात् उसके झोले में एक हाथी है, इसी में उसके परिहास की बारीकी थी। वाक़ई यह परिहास बारीक था या नहीं, यह तो कहा नहीं जा सकता, फिर भी इस परिहास से दोनों ही खुश होते... और शरद ऋतु की सुबह में एक वयस्क और एक छोटे बच्चे की सरल हंसी देख कर मुझे बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों में एक बात और भी अक्सर होती। रहमत मिनी से कहता, ''खोंखी तोमि शशुर बाड़ी क्खोनो जाबेना।'' (मुन्नी, तुम ससुराल कभी मत जाना)

बंगाली घर की लड़की जन्म से ही ससुराल शब्द से परिचित हो जाती है। पर चूंकि हम लोग थोड़ा-बहुत आधुनिक युग के थे, इसलिए अभी तक बिटिया को यह नहीं बताया था कि ससुराल क्या

चीज होती है। इसलिए रहमत की बात वह ठीक-ठीक समझ नहीं पाती थी। पर बात का जवाब दिए बिना चुप रहना उसके स्वभाग के विरुद्ध बात थी। वह पलट कर पूछती, "तुम यूं ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक ससुर के प्रति घूंसा दिखा कर कहता, "हामी शशुर के मारबे।" (मैं ससुर को मारूंगा।)

यह सुनकर मिनी ससुर नामक किसी अपरिचित प्राणी की दुर्दशा सोच कर खिलखिला कर हंस पड़ती थी।

इस समय शरद् की शुभ्र सुबह है। पुराने जमाने में इसी समय राजे-महाराजे दिग्विजय के लिए निकलते थे। मैं कलकत्ता छोड़ कर कहीं नहीं गया, इसीलिए शायद मेरा मन सारी दुनिया का चक्कर काटता फिरता है। मैं मानों अपने घर के कोने का चिर प्राणी हूं। बाहर की दुनिया का देखने के लिए मेरा मन हमेशा उदास रहता है। पर किसी शहर का नाम सुनते ही मेरा मन उस ओर दौड़ पड़ता है, और किसी दूसरे देश के आदमी को देखते ही नदी, पहाड़ और जंगलों के बीच एक घर का दृश्य मन में उभर पड़ता है, और खुशियों से भरपूर आजाद जीवन जीने की कल्पना से मन विभोर हो उठता है।

दूसरी तरफ, मैं ऐसी जड़ प्रकृति का आदमी हूं जिसे अपने घर का कोना छोड़ कर कहीं जाने के नाम पर मेरे सिर पर मानो बिजली गिर पड़ती है। इसलिए सुबह-सुबह अपने इस छोटे-से कमरे में टेबल के सामने बैठ कर काबुलीवाले के साथ गपशप करने से मेरा भ्रमण कार्य भी हो जाता था। दोनों तरफ रूखी बंजर जमीन, दुर्गम लाल पहाड़ों की कतार, उसके बीच से संकरीली रेतीली सड़क, बोझ से लदे ऊंटों की धीमी चाल, पगड़ी डाले व्यापारी या राही, कोई ऊंट पर सवार तो कोई पैदल, किसी के हाथ में बर्छी, तो किसी के हाथ में पुराने समय की बंदूक जो पत्थरों के आपस में रगड़ने से चलती थी... काबुलीवाला धीरे-धीरे गम्भीर आवाज में टूटी-फूटी बंगला भाषा में अपने देश की कहानी सुनाता और मेरी आंखों के सामने वह सारा दृश्य सजीव हो उठता।

मिनी की मां बड़ी ही शक्की स्वभाव की थी। सड़क पर किसी भी चीज की आहट होती तो उसे लगता दुनिया के तमाम शराबी हमारे घर की ओर दौडे आ रहे हैं; इस दुनिया में हर जगह चोर, डाकू, शराबी, सांप, शेर, मलेरिया, तिलचट्टे तथा गोरे सिपाही भरे पड़े हैं। इतने दिन (वैसे ज्यादा दिन नहीं) पृथ्वी पर रह कर भी उसके मन से डर गया नहीं था।

रहमत काबूलीवाले पर उसका मन पूरी तरह भरोसा नहीं कर पाता था। उस पर मैं बराबर नजर रखूं, इसके लिए वह बार-बार मुझ से मिन्नतें करती थी। मैं हंस कर उसकी शंका को टालता तो वह एक के बाद एक प्रश्न करती। जैसे, क्या कभी किसी का बच्चा चोरी नहीं चला जाता? काबुल देश में क्या गुलाम प्रथा नहीं है? एक लम्बे-चौडें काबुलीवाले के लिए एक छोटे-से बच्चे को उठा ले जाना क्या बिल्कुल असम्भव काम है?

मुझे कहना पड़ा कि बात असम्भव ही नहीं, बल्कि अविश्वसनीय भी है। विश्वास करने की शक्ति

सब की एक जैसी नहीं होती, इसलिए मेरी पत्नी के मन में डर बना ही रहा, फिर भी बिना किसी गलती के रहमत को अपने घर पर आने के लिए मैं मना नहीं कर सका।

× × ×

हर साल माघ के महीने में रहमत अपने देश जाता था। इन दिनों अपने लेन-देन का हिसाब करने में वह व्यस्त रहता। घर-घर जाकर पैसा वसूलना पड़ता। फिर भी एक बार समय निकाल कर वह मिनी से जरूर भेंट कर जाता। देखने पर सचमुच लगता था जैसे दोनों के बीच कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है। जिस दिन रहमत सुबह नहीं आ पाता, उस दिन शाम को आता। सांझ के आधे अंधेरे में ढीले-ढाले कुर्ते-पजामे में झोला लटकाए काबुलीवाले को देखकर वाकई मन में एक आशंका-सी हो जाती पर जब मैं देखता कि मिनी, 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' कह कर हंसती-हंसती दौड़ती हुई आती है और दो दोस्त, जिनकी उम्र में इतना अन्तर था, आपस में वही पुराना हंसी-मजाक करते है तो मेरा मन भी प्रसन्न हो उठता।

एक दिन सुबह पढ़ाई के अपने छोटे-से कमरे में बैठ कर मैं अपनी किताब के प्रूफ देख रहा था। जाते-जाते सर्दी कस कर पड़ रही थी। लोग ठंड से कांप रहे थे। खिड़की से धूप छन कर मेरे पैरों पर पड़ रही थी। बड़ा अच्छा लग रहा था। सुबह के शायद आठ बज रहे थे। सिर पर टोपी डाले, गले में मफलर लपेटे सुबह घूमने के लिए निकलने वाले लोग घूम कर घर लौट आए थे। इसी समय सड़क पर बड़े जोरों का शोरगुल सुनाई पड़ा।

मैंने देखा, हमारे रहमत को दो सिपाही बांध कर ला रहे थे... उसके पीछे-पीछे उत्साही बच्चों की टोली चल रही थी। रहमत के कपड़ों पर खून के छींटे थे और एक सिपाही के हाथ में खून से रंगा हुआ एक छुरा था। मैंने कमरे से बाहर निकल कर सिपाहियों को रोका और पूछा, "मामला क्या है?"

कुछ सिपाहियों से और कुछ रहमत से सुन कर जो जान सका, उससे यह मालूम हुआ कि हमारे ही एक पड़ोसी ने रामपुरी चादर खरीदने के लिए रहमत ने कुछ रुपये उधार लिए थे। बाद में वह उस कर्ज से मुकर गया। इसी बात को लेकर पहले बहस हुई और फिर बात इतनी आगे बढ़ी कि गुस्से में आकर रहमत ने उसे छुरा घोंप दिया।

रहमत उस झूठे को अश्लील गालियां दे रहा था। ठीक उसी समय मिनी 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' पुकारती दौड़ी आई।

रहमत का चेहरा तुरन्त खुशी से खिल उठा। आज उसके कंधे पर थैला नहीं था, इसलिए थैले से सम्बन्धित मजाक आज नहीं हो पाया। मिनी एक सांस में पूछ गई, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत हंस कर बोला, "वहीं जा रहा हूं।" पर तुरन्त रहमत को लगा, उसका यह जवाब मिनी को पसन्द नहीं आया, तो उसने हाथ दिखा कर कहा, "क्या करूं? शशुर को मारता पर हाथ जो बंधे हैं।"

गम्भीर रूप से चोट पहुंचाने के अपराध में रहमत को कई साल की कैद की सजा मिली।

उसकी बात एक तरह से मैं भूल ही गया। जब हम अपने घरों में बैठ अपने रोज के कामों में दिन काटते रहते, तब एक स्वतन्त्र पहाड़ों का आदमी कैदखाने में किस तरह अपने दिन काट रहा होगा, यह मुझे याद भी नहीं आया।

और चंचल-चित्त मिनी का आचरण कितना लज्जाजनक रहा, यह उसके पिता को भी मानना पड़ा। बड़ी आसानी से अपने पुराने दोस्त को भूल कर पहले उसने साईस नबी से दोस्ती की। फिर जैसे-जैसे वह बड़ी होती गई, सखा की जगह एक-एक करके उसकी सखियों की संख्या बढ़ती गई, यहां तक कि अब वह अपने पिता के लिखने के कमरे में भी अधिक नहीं आती थी। मैंने तो एक तरह से उससे छुट्टी ही कर ली थी।

कई साल बीत गए। एक और शरद् आया। मेरी मिनी की शादी पक्की हो गई थी। दशहरे की छुट्टी में उसकी शादी होनी थी। दुर्गा की तरह ही मेरे घर की आनन्दमयी अपने पिता का घर अंधकारमय कर अपने पति के घर चली जाने वाली थी।

आज की सुबह बड़ी मनोरम थी। लगता था, बरसात के बाद शरद् की नई-नहाई धूप सुहागे से गलाए हुए सोने की तरह जगमग कर रही है। यहां तक कि कलकत्ते की गलियों के अन्दर गंदे, बेतरतीब, एक दूसरे से सटे-सटे झर-झर पुराने ईटों के बने मकानों पर भी यह धूप एक अपूर्व निखार ले आई थी।

आज पौ फटते ही मेरे घर पर शहनाई बजने लगी थी। इसका सुर जैसे मेरे हृदय की हड्डियों से टकरा कर रोता हुआ निकल रहा था। करुण भैरवी राग आने वाले मेरे विच्छेद की व्यथा शरद् की धूप की तरह सारी दुनिया में फैला रहा था। आज मेरी मिनी की शादी थी।

सुबह से ही लोगों का आना-जाना, चहल-पहल शुरू हो गई थी। आंगन में शामियाना लगाया जा रहा था, घर के हर कमरे और बरामदे में झाड़-फानूस लगाए जा रहे थे। शीशे की टुन-टुन आवाज उठ रही थी। खूब हल्ला-गुल्ला हो रहा था।

मैं अपने लिखने के कमरे में बैठ कर हिसाब-किताब देख रहा था। एकाएक रहमत आकर मुझे सलाम करके सामने खड़ा हो गया।

मैंने तो पहले उसे पहचाना ही नहीं। उसके पास उसका झोला नहीं था, उसके बाल लम्बे थे, उसके शरीर में पहले जैसी ताकत नहीं थी। अन्त में उसके चेहरे पर खिली मुस्कुराहट को देख कर मैंने उसे पहचान लिया।

मैंने पूछा, "क्यों रहमत, कब आए?"

रहमत बोला, "कल शाम को ही जेल से छूटा।"

यह बात मेरे कानों में खट् से चुभी। मैंने किसी खूनी को अपनी आंखों के सामने कभी नहीं देखा था। आज उसे देख कर मेरा सारा मन संकुचित हो उठा। मुझे लगा, आज के इस शुभ दिन इसका यहां से चला जाना ही ठीक रहता।

मैंने उससे कहा, "आज मेरे घर एक काम है। मैं थोड़ा व्यस्त हूं। आज तुम जाओ।"

यह सुन कर रहमत जाने लगा। पर फिर दरवाजे के पास जाकर थोड़ा सहम कर बोला, "एक बार खोंखी (मुन्नी) को नहीं देख सकता?"

शायद उसके मन में यही धारणा रही होगी कि मिनी अब भी वैसी ही है। शायद वह सोच रहा होगा, मिनी अब भी, "काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले" कह कर दौड़ी आएगी और ठीक उसी तरह दोनों के बीच पुराना हसी-मजाक चलेगा। यहां तक कि वह पुरानी दोस्ती की याद में एक बक्सा अंगूर और कागज में लपेट कर थोड़े बादाम और किशमिश शायद किसी अपने देशवाले दोस्त से मांग कर लाया था। उसका अपना झोला शायद अब नही रहा था।

मैंने कहा, "आज घर पर काम है, आज किसी से भेंट नहीं हो सकती।"

वह शायद थोड़ा उदास हुआ। उसने हतप्रभ-सा मेरी तरफ देखा। फिर 'सलाम बाबू' कह कर दरवाजे से बाहर निकल गया।

मेरे मन में एक ठेस-सी लगी। मैं सोच रहा था कि उसे वापस बुलाऊं पर मैंने देखा कि वह खुद लौटा आ रहा है।

नज़दीक आकर बोला, "यह अंगूर और थोड़े बादाम और किशमिश खोंखी के लिए लाया था, उसे दे दीजिएगा।"

उसके हाथ से चीज़ें लेकर मैं उसे पैसे देने लगा तो उसने मेरा हाथ पकड लिया। बोला, "आपकी बड़ी मेहरबानी है। मुझे हमेशा याद रहेगा। मुझे पैसा मत दीजिए। बाबू, जैसी तुम्हारी एक लड़की है न, वैसी ही मेरे देश में मेरी भी एक लड़की है। उसके चेहरे को याद कर मैं तुम्हारी लड़की के लिए कुछ मेवा लाकर आता था। मैं सौदा करने तो नहीं आता था।"

इतना कह कर उसने अपने लम्बे-ढीले कुर्ते के अन्दर हाथ डालकर एक मैले से कागज का टुकड़ा निकाला। फिर बहुत सम्भाल कर उसकी तहें खोल कर उसे मेरे टेबल पर बिछाया।

मैंने देखा, कागज पर एक छोटी-सी लड़की के हाथ की छाप थे। फोटो नहीं, तेल की बनी तस्वीर भी नहीं। हाथ में कालिख लगाकर छाप ली गई। बेटी की इस यादगार को छाती से चिपकाए रहमत हर साल कलकत्ते की सड़कों पर मेवा बेचने के लिए आता, लेकिन उसे लगता जैसे उस बालिका के हाथ के कोमल स्पर्श ने उसके विशाल विरही हृदय में अमृत भर दिया है।

देखकर मेरी आंखें छलछला उठी। मैं भूल गया कि मैं एक संभ्रात खानदान का बंगाली हूं और वह एक सामान्य मेवे वाला काबुली। मैं समझ चुका था कि जो वह है, मैं भी वही हूं। वह भी एक पिता है, मैं भी पिता हूं। उसकी पर्वत गृह वासिनी छोटी-सी 'पार्वती' के उस हाथ की छाप ने मुझे अपनी मिनी की याद दिला दी। मैंने तुरन्त उसे अन्दर से बुलवा भेजा। अन्दर से इसके खिलाफ बड़ी आवाज़े उठी, पर मैंने एक न सुनी। लाल बनारसी ओढ़े हुई, माथे पर चन्दन तिलक की रंगोली सजाए, दुल्हन बनी मिनी शर्म से गड़ी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर काबुलीवाला सकपका गया। वह अपना पुराना हंसी-मजाक जमा नहीं पाया। अन्त में हंस कर बोला, ''खोंखी तोमि ससुर बाड़ी जाबिस?''

(मुन्नी तू ससुराल जाएगी?)

मिनी अब ससुराल का अर्थ समझने लगी थी। अब वह पहले की तरह उत्तर नहीं दे सकी... रहमत की बात सुनकर शरमा कर मुंह फेर कर खड़ी हो गई। काबुलीवाले के साथ मिनी का जिस रोज पहला परिचय हुआ था, मुझे उस दिन की याद आई मेरा मन जाने क्यों व्यथित हो उठा।

मिनी चली गई। रहमत एक लम्बी सांस खींच कर जमीन पर बैठ गया। उसे अचानक ही ख्याल आया कि उसकी बेटी भी इस बीच इतनी ही बड़ी हो गई होगी। उसके साथ भी उसे नए सिरे से दोस्ती करनी पड़ेगी। वह उसे पहले की तरह उस रूप में नहीं देख पाएगा। इन आठ वर्षों में उस पर क्या बीती होगी, कौन जाने।

शरद की मुलायम धूप की किरणों में शहनाई बज रही थी। कलकत्ते की एक गली में बैठकर रहमत अफगानिस्तान के मेरू पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट उसके हाथ में थमाया और कहा, ''रहमत, तुम अपनी लड़की के पास अपने देश लौट जाओ। तुम बाप-बेटी के मिलन से मेरी मिनी का भी कल्याण होगा।''

ये रुपये दान देकर मैंने समारोह के एक-दो कार्यक्रम कम कर दिए। जैसा सोचा था, वैसी बिजली की रोशनी नहीं की। नगाड़े भी नहीं बजवाए। अन्दर महिलाएं अत्यन्त असन्तुष्ट हुई, पर मंगल-आलोक से मेरा उत्सव शुभ उज्ज्वल हो उठा।

रामकनाई की बेवकूफी

जो लोग कहते हैं कि गुरुचरण के मरने के समय उसकी दूसरी घरवाली अन्त:पुर में ताश खेल रही थी, वे हैं विश्व-निन्दक। वे बात का बतंगड़ बनाते हैं। असल में उस समय गुरुचरण की पत्नी अपनी एक टांग पर दूसरी टांग चढ़ाकर गालों से घुटने टिकाए, कच्ची इमली, हरी मिर्च और चिंगड़ी मछली की सूखी मसालेदार भाजी के साथ पानी में भिगोए हुए ठण्डे चावल बड़े मन से खा रही थी। बाहर से जब उसकी बुलाहट आई, उस समय ढ़ेर-सारे चबाए हुए साग के डन्ठल और खाली जूठे बर्तन छोड़कर गम्भीर आवाज़ में बोली, ''दो मुट्ठी ठन्डा बासी भात मुंह में डाल सकूं, इसके लिए भी फुर्सत नहीं मिलती।''

उधर डाक्टर ने जब अपनी अन्तिम राय सुना दी, तब गुरुचरण का भाई रामकनाई रोगी के पास बैठकर धीरे से बोला, ''भैया, अगर तुम्हें अपनी वसीयत तैयार करने की इच्छा हो तो बोलो।''

गुरुचरण बुझी-बुझी आवाज में बोला, ''मैं बोलता हूं तुम लिख लो।''

रामकनाई कागज़-कलम लेकर लिखने बैठा। गुरुचरण ने लिखवाया, ''अपनी चलअचल, सम्पत्ति जमीन-जायदाद सब कुछ मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमति बरदा सुन्दरी को देता हूं।''

रामकनाई ने लिखा, पर उसकी कलम जैसे चल ही नहीं रही हो। उसे बड़ी उम्मीद थी कि उसके एकलौते बेटे नवद्वीप को निसन्तान ताऊ की सारी जायदाद मिलेगी। यद्यपि दोनों भाई अलग-अलग थे, फिर भी सिर्फ इसी उम्मीद से नवद्वीप की मां ने नवद्वीप को नौकरी पर नहीं भेजा था कि उसे ताऊ की सारी सम्पत्ति मिलेगी। उसकी जल्दी-जल्दी शादी भी कर दी थी और दुश्मन के मुह में खाक उसका विवाह निष्फल नहीं रहा था।

जो कुछ भी हो, गुरुचरण ने जो कहा, रामकनाई ने लिखा एवं दस्तखत करने के लिए भैया के हाथ में कलम थमा दी। गुरुचरण ने कमजोर हाथों से जो दस्तखत किये तो उसे देखकर यह समझ पाना कठिन था कि वे कई कांपती टेढ़ी-मेढ़ी काली रेखायें थीं या और कुछ।

ठंडे चावल खाकर पत्नी जब तक आई, गुरुचरण की बोली बन्द हो चुकी थी। यह देखकर पत्नी रोने लगी। जो लोग बडी उम्मीदें लगाकर भी सम्पत्ति से वंचित हुए थे, वह लोग यह देखकर बोले, ''यह रोना नहीं, मगर के आंसू हैं।'' पर यह बात सच नहीं थी।

वसीयत की बात सुनकर नवद्वीप की मां दौड़ी हुई आई और भयंकर शोर-गुल मचा दिया। बोली, ''मरते समय बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। सोने के टुकड़े जैसे भतीजे के रहते हुए...।''

रामकनाई यद्यपि पत्नी का बड़ा आदर करते थे... दूसरे शब्दों में इसे भय भी कहा जा सकता है... वह भी इस समय चूप नहीं रह सके। दौड़ते हुए आये और बोले, "मंझली बहू। तुम्हारी मति तो नहीं मारी गई है। तुम ऐसा क्यों कर रही हो?" भैया चले गए, पर मैं तो हूं न। तुमको जो कुछ कहना है, समय पर मुझे कह देना। यह ठीक समय नहीं है।"

खबर पाकर जब नवद्वीप पहुंचा, तब तक उसके ताऊ मर चुके थे। नवद्वीप मरे हुए व्यक्ति को धमकाकर बोला, "देखूगां, मुखाग्नि कौन देता है। यदि मैं श्राद्ध करूं तो मेरा नाम नवद्वीप नहीं।"

गुरुचरण एक ऐसे व्यक्ति थे जो यह सब मानते नहीं थे। वे ड.फ़ साहब के विद्यार्थी रहे थे। शास्त्रों में जिस पदार्थ को खाने के लिए बिल्कुल निषिद्ध माना गया है, उसी के प्रति उनकी विशेष रूचि थी। लोग यदि उन्हें ईसाई कहते तो वे जीभ दांतों से काटकर तुरन्त बोलते, "राम! राम! यदि मैं ईसाई हूं तो गोमांस खांऊ।" अपनी जिन्दगी में जो ऐसा रहा हो, वह मरने पर श्राद्ध न होने या पिंडदान न पाने पर विचलित होगा, उसकी संभावना ही नहीं थी। पर फिलहाल, नवद्वीप के लिए प्रतिशोध का और कोई उपाय नहीं था। उसको इसी बात का संतोष था कि परलोक में जाकर भी ताऊ मरे ही रहे जाएंगे। उसे था जब तक वह इस संसार में रहेगा, तब तक, ताऊ की जायदाद न मिलने पर भी, दो जून की रोटी, थोड़ी परेशानी से ही सही, नसीब हो जाएगी, लेकिन ताऊजी जिस लोक सिधारे थे, वहां भीख मांगने पर भी पिंडदान नहीं मिल सकता था।

जीने में बड़ी सुविधाएं हैं।

रामकनाई वरदा सुन्दरी के पास जाकर बोले, ''भाभी, भैया तुम्हारे ही नाम सारी जायदाद कर गए है। यह रही उसकी वसीयत। लोहे के सन्दूक में इसे सम्भालकर रख देना।''

गुरुचरण की विधवा उस समय गला फाड़कर रोते हुए शोक मना रही थी। दो-चार नौकरानियां भी उसके साथ सुर में सुर मिलाकर, दो-चार शब्द जोड़कर इस तरह विलाप कर रही थी कि मुहल्ले भर की नींद खराब हो गई। इसी बीच वसीयत के इस कागज़ के टुकड़े ने शोक-संगीत को बेसूरा कर दिया। वातावरण बिगड़ गया।

पूरे मामले ने एकाएक इस प्रकार से एक दूसरा ही मोड़ ले लिया।

'हाय मेरा सर्वनाश हो गया रे! मेरे तो भाग्य ही फूट गए रे!' अच्छा देवर जी, यह लिखावट किसकी है? तुम्हारी है क्या? अजी तुम्हारी तरह प्यार से अब मुझे कौन देखेगा! मेरे सुख-दुख की किसे परवाह होगी...।' 'तुम सब ज़रा चुप हो जाओ। ख़ामख़ा चिल्ला रही हो। बात जरा सुनने दो...।' 'अरे, मैं क्यों नहीं पहले चली गई... मैं क्यों जिन्दा रही?'

रामकनाई छोटी-सी एक सांस खींच कर मन ही मन बोला, 'यह हम लोगों के भाग्य का दोष है।'

घर लौटकर नवद्वीप की मां रामकनाई के पीछे पड़ गई। बोझ से लदी बैलगाड़ी जब खाई में गिर पडती है तो जिस तरह गाडीवान के हज़ार मारने-पीटने पर भी बैल असहाय होकर चुपचाप खड़ा रहता है, ठीक उसी तरह रामकनाई भी काफी देर तक चुपचाप सहता रहा। फिर अन्त में कातर स्वर में बोला, ''मेरी क्या ग़लती है? मैं तो भैया नहीं हूं।''

नवद्वीप की मां तुनक उठी। बोली, ''ना, तुम तो बड़े अच्छे हो न। सीधे-सपाट आदमी। कुछ समझते-बूझते ही नहीं। भैया ने कहा 'लिखो', और भाई वैसा ही लिख गया। तुम लोग सबके-सब एक जैसे हो। समय आने पर यह कुकर्म करोगे, यही ठाने बैठे होगे। मेरे मरने पर किस मुंहजली चुड़ैल को घर उठा लाओगे... और मेरे सोने के टुकड़े नवद्वीप को सड़क पर बैठाओगे। पर घबराओ मत, मैं जल्दी नहीं मरने वाली।''

इस प्रकार रामकनाई के तरह-तरह के अत्याचार की याद कर उसकी पत्नी का असन्तोष धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा था। रामकनाई जानता था कि पत्नी की काल्पनिक आशंकाओं के प्रतिवाद के तौर पर यदि वह कुछ भी बोला तो और भी बुरा होगा। इसी डर से वह अपराधी की तरह चुपचाप बैठा रहा, जैसे वाकई ग़लती उसी से हुई है, और उन्होनें चांद के टुकड़े नवद्वीप को ज़मीन-जायदाद से वंचित कर अपनी किसी दूसरी पत्नी को सारा कुछ लिख-पढ़ दिया हो। अब अपराध स्वीकार कर लेने के सिवाय चारा ही क्या था।

इस बीच नवद्वीप अपने बुद्धिमान दोस्तों के साथ सलाह-मशविरा करने के बाद आकर मां से बोला, ''चिन्ता की कोई बात नहीं। यह सम्पति मुझे ही मिलेगी। बस... कुछ दिनों के लिए पिताजी को यहां से हटाना पड़ेगा। उनके यहां रहने से सारा मामला बिगड़ जाएगा।''

नवद्वीप को अपने पिता की बुद्धि पर रत्ती भर भी भरोसा नहीं था। वह अन्त तक मां के पीछे पड़ा रहा। जब गृहस्थी के लिए नितांत अनावश्यक, निर्बोध कर्मनाश पिता ने कोई बहाना बनाकर कुछ दिनों के लिए काशी में जाकर आश्रय लिया।

थोड़े दिनों के बाद वरदा सुन्दरी और नवद्वीप चन्द्र वसीयत के सम्बन्ध में एक-दूसरे पर मुकदमा दायर करके कचहरी पहुंचे। नवद्वीप अपने नाम जो वसीयत पेश कर रहा था, उसमें गुरुचरण के दस्तखत साफ़-साफ़ दिखाई दे रहे थे। वसीयत की असलियत साबित करने के लिए एक-दो निःस्वार्थ गवाह भी मिल गए। वरदा सुन्दरी की तरफ नवद्वीप का बाप ही एकमात्र गवाह था। मृत व्यक्ति के दस्तख़त भी किसी की समझ में नहीं आ रहे थे। उनके यहां एक ममेरा भाई पल रहा था। उसने कहा, ''दीदी, तुम्हें किस बात की चिन्ता है। मैं खुद गवाही दूंगा और दूसरे गवाहों को भी जुटाऊंगा।''

मामले ने जब गम्भीर रूप धारण किया तब नवद्वीप की मां ने नवद्वीप के पिता को काशी से बुला भेजा। रामकनाई बैग और छाता लिए समय पर हाज़िर हो गया। थोड़ी-बहुत मीठी बातें करने की कोशिश की, फिर हाथ जोड़कर बोला, ''गुलाम हाजिर है। अब महारानी की क्या आज्ञा है?''

पत्नी सिर झकझोर कर बोली, ''रहने भी दो। नखरे बन्द करो। अब तक तो बहाना बनाकर काशी रह आए, एक दिन के लिए भी याद नहीं किया।'' आदि-आदि।

इस तरह से काफी देर तक दोनों में प्यार-भरी झड़पें होती रही। अन्त में नवद्वीप की मां की शिकायत पति को छोड़कर पूरी पुरुष जाति से हो गई। बोली, ''पुरुष का प्यार कसाई के मुर्गी पालने के प्यार जैसा होता है।''

नवद्वीप के पिता बोले, ''औरतों का मुंह मीठा होता है पर दिल में छुरी होती है।'' वैसे, उन्हें तो मुंह के दो मीठे बोल ही कब नसीब हुए थे, कहना मुश्किल है।

इसी बीच अदालत से रामकनाई के नाम समन आया। हैरान होकर जब वह इसका मतलब समझने की कोशिश कर ही रहे थे, तभी नवद्वीप की मां आकर रो पड़ी। बोली, ''हड्डी जलाने वाली चुड़ैल न सिर्फ नवद्वीप को उसके स्नेही ताऊ की जायदाद से वंचित कर रही है, बल्कि मेरे सोने के टुकड़े जैसे लड़के को जेल भिजवाने पर भी तुली है।''

धीरे-धीरे जब रामकनाई को सारी बातें मालूम पड़ी, तो वह अचम्भे में पड़ गए। ऊंची आवाज में बोल पड़े, ''तुम लोग यह कैसा सर्वनाश करने पर तुले हुए हो?''

पत्नी ने अब अपना असली स्वरूप धारण किया। ''क्यों? इसमें नवद्वीप का क्या दोष है? वह

अपने ताऊ की सम्पत्ति नहीं लेगा? यों ही एक बात पर छोड़ देगा? कहां की कानी, पति को मारने वाली, रांड की बेटी आकर राज करेगी... यह मरते समय चुडैल के मन्त्र की ताकत से बेवकूफ ताऊ की बुद्धि भ्रष्ट हो गई तो क्या लायक भतीजा ताऊ की उस गलती को नहीं सुधारेगा?" वह ऐसी भी क्या गलती कर रहा है?"

हतप्रभ रामकनाई ने जब देखा कि उसके पुत्र और पत्नी कभी गरजते हैं, कभी धमकाते हैं, कभी रोते हैं, तो वह अपना ही सिर पटक कर चुपचाप बैठ गया। उसने खाना छोड़ दिया, पानी तक नहीं छुआ।

इसी तरह से दो दिन भूख-प्यास में कट गए। मुकदमे का दिन आया। दूसरी तरफ नवद्वीप ने वरदा सुन्दरी के ममेरे भाई को लालच दिखाकर इतना वश में कर लिया था कि उसने अनायास ही नवद्वीप की ओर से गवाही दी। जीत जब वरदा सुन्दरी का साथ छोड़कर दूसरी तरफ जा रही थी तभी रामकनाई की पुकार हुई।

भूख से मरणासन्न, सूखी जीभ, कांपती हुई पतली उंगलियों से बूढ़े ने कठघरे को पकड़ा। चतुर वकील तरह-तरह के जिरह करके बातें निकालना चाहता था... सन्दर्भ से कटी बातें उठाकर वह आहिस्ता-आहिस्ता टेढ़ा रास्ता पकड़कर प्रसंग पर जा रहा था।

रामकनाई हाथ जोड़कर जज से बोली, 'हुजूर, मैं बूढ़ा हूं, कमजोर हूं। ज्यादा कुछ बोलने की हिम्मत भी नहीं है मुझमें। मुझे जो कुछ कहना है, संक्षेप में कह लेने दीजिए। मेरे भैया दिवंगत गुरुचरण चक्रवर्ती मरते वक्त अपनी सारी धन-सम्पत्ति अपनी पत्नी श्रीमती वरदा सुन्दरी के नाम कर गए हैं। वसीयत मैंने अपने हाथों से लिखी थी और भैया ने अपने हाथों से उस पर दस्तखत किए। मेरे पुत्र नवद्वीप चन्द्र ने जो वसीयत पेश की है, वह जाली है।" इतना कहकर रामकनाई कांपते-कांपते बेहोश हो गया।

चतुर वकील बड़े कौतुक से बगल वाले वकील से बोला, बाई जोक! इस आदमी को कैसा दबोचा,

देखा।'' ममेरा भाई दौडा हुआ जाकर अपनी दीदी से बोला, ''बूढ़े ने तो सारी मिट्टी पलीत कर दी थी। मेरी गवाही पर ही मुकदमा टिका है।''

दीदी ने कहा, ठीक कह रहे हो। आदमी को कौन पहचान सकता है? मैं तो बूढ़े को भलामानस समझती थी।''

जेल में बन्द नवद्वीप के बुद्धिमान दोस्तों ने बहुत सोचकर निश्चय किया, ''जरूर बुड्ढा डर के मारे यह बात बोल गया होगा। कटघरे में खड़े होने के बाद दिमाग काबू नहीं रख पाया होगा। ऐसा महामूर्ख तो पूरे शहर में ढूंढने से भी नहीं मिलेगा।''

घर लौटकर रामकनाई को ज्वर हो गया। इतना तेज बुखार कि बकते-बकते, अपने बेटे का नाम लेते-लेते, वह निर्बोध, सारा मामला बिगाड़ने वाला नवद्वीप का अनावश्यक बाप दुनिया से उठ गया।

रिश्तेदारों में से किसी ने कहा, ''थोड़े दिन और पहले चला गया होता तो अच्छा होता।'' पर उनका नाम मैं बताना नहीं चाहूंगा।

लेन-देन

पांच लड़कों के बाद जब एक लड़की पैदा हुई तो मां-बाप ने बड़े प्यार से उसका नाम रखा - निरुपमा। इस परिवार में इससे पहले इतना फैन्सी नाम कभी किसी ने सुना तक नहीं था। नाम के लिए देवी-देवताओं के नामों का प्रचलन था, जैसे गणेश, कार्तिकेय, पार्वती आदि-आदि।

अब निरुपमा की शादी की बातचीत चल रही थी। निरुपमा के पिता रामसुन्दर मित्र बड़ी खोज़-तलाश कर रहे थे, पर मन लायक लड़का उन्हें मिल नहीं रहा था। अन्त में उन्होंने एक बहुत बड़े राय बहादुर के घर के एकमात्र लड़के को ढूंढ निकाला। राय बहादुर साहब की पुश्तैनी ज़मीन-जायदाद तो अब रही नहीं थी फिर भी वह आदमी खानदानी थे।

लड़के वालों की तरफ़ से दस हजार रुपये नकद और बहुत सारी चीज़ों की मांग की गई। रामसुन्दर कुछ भी सोचे बगैर उसके लिए राजी हो गए। ऐसे लड़के को किसी भी हालत में वह नहीं छोड़ सकते थे।

पर रुपयों का जुगाड़ हो ही नहीं पा रहा था। कुछ चीज़े गिरवी रखने और कुछ चीजें बेचने के बावजूद छः-सात हजार रुपये का जुगाड़ करना बाकी रह गया। इधर शादी की तारीख नज़दीक आती जा रही थी।

अन्त में विवाह का दिन भी आ गया। बहुत ज्यादा ब्याज पर कोई उधार देने के लिए राजी हुआ भी तो ऐन मौके पर वह भी गायब हो गया। शादी के मंडप में शोरगुल मच गया। रामसुन्दर, रायबहादुर साहब के सामने हाथ-पैर जोड़ कर बोले, ''शुभ कार्य सम्पन्न होने दीजिए। रुपये मैं जरूर चुका दूंगा।''

रायबहादुर बोले, ''रुपये हाथ में न आने पर लड़के को मंडप में नहीं जाने दिया जाएगा।''

इस दुर्घटना के कारण अन्दर भी रोना-धोना शुरू हो गया। इस दुर्घटना का जो मूल कारण थी, वह लाल साड़ी पहनकर, माथे पर चन्दन लगाकर, जेवर आदि पहनकर चुपचाप बैठी थी। भावी ससुराल के प्रति उसके मन में कोई श्रद्धा या अनुराग का भाव जग रहा था, यह नहीं कहा जा सकता।

इसी बीच एक अच्छी बात हुई। अचानक लड़का अपने पिता की अवज्ञा कर बोला, ''खरीद-बिक्री, मोल-भाव की बात मैं नहीं समझता। शादी करने आया था, शादी करके ही लौटूंगा।

बाप ने जिसे सामने पाया, उसे ही कहा, ''देखा न साहब, आजकल के लड़कों का व्यवहार।'' उनके से एक-दो प्रवीण व्यक्ति थे।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति का जहर अपने बच्चे में प्रत्यक्ष देखकर रायबहादुर निराश होकर बैठ गए। शादी किसी तरह उदास, आनन्दहीन ढंग से सम्पन्न हो ही गई।

विदाई के समय निरुपमा को छाती से लगाते समय उसके पिता अपने आंसुओं को संभाल नहीं पाए। नीरू ने पूछा, "पिताजी, वे लोग क्या मुझे यहां कभी नहीं भेजेंगे?"

रामसुन्दर ने कहा, "क्यों नहीं भेजेंगे, बेटी? मैं खुद जाकर तुम्हें बुला लाऊंगा।"

उसके बाद रामसुंदर अक्सर अपनी बेटी को देखने के लिए उसकी ससुराल जाते, पर समधी के घर पर उसका न तो उचित आदर होता और न ही वहां उनका कोई सम्मान था। नौकर-चाकर भी उन्हें छोटी नज़रों से देखते थे। जनाने के बाहर एक छोटे से अलग कमरे में कभी-कभी बेटी को पांच मिनट के लिए देख पाते, कभी वह भी नहीं। समधी के घर इतना निरादर आखिर कहां तक सहन किया जा सकता था? रामसुन्दर ने सोचा, 'जैसे भी हो, रुपये मैं चुका दूंगा?'

पर इस शादी के कारण वे कर्ज़ से इतना दब गए थे कि उसे उतारना उनके लिए मुश्किल था। घर का खर्च भी खींचतान कर ही चल रहा था। कर्ज़ देने वालों की नज़र से बचने के लिए उन्हें अक्सर नए-नए उपाय करने पड़ते।

उधर ससुराल वाले बात-बात में लड़की को ताने देने लगे। मैके की शिकायतें सुनकर किवाड़ बन्द कर आंसू बहाना निरुपमा का रोज़ का काम बन गया था।

खासतौर पर सास का आक्रोश तो मानों कभी मिटने वाला ही नहीं था। अगर कोई कहता, 'बहु बड़ी सुन्दर है, देखने पर जी भर आता है' तो सास तुनक कर बोलती, 'खाक सुन्दर है। जैसा घर, वैसी सुन्दरता।'

यहां तक कि बहु के खाने-पहनने की ओर भी कोई ध्यान न देता। अगर दया में आकर कोई पड़ोसिन टोक भी देती तो सास तुरन्त बोलती, ''जो मिल रहा है, वही बहुत है!'' अर्थात्, बाप अगर पूरी कीमत चुकाता तो लड़की को भी पूरा आदर दिया जाता। सभी ऐसा आचरण करते जैसे बहु का उस घर में कोई अधिकार ही न हो, जैसे वह सबको ठग कर इस घर में घुस आई हो।

शायद लड़की के प्रति ससुराल वालों की अवहेलना, निरादर और अपमान की बात बाप के कानों में पहुंची होगी, इसलिए रामसुन्दर रुपया चुकाने के लिए अन्त में अपना घर बेचने की कोशिश करने लगे।

अपने लड़कों को वह बेघर करने जा रहे थे, यह बात रामसुन्दर ने अपने लड़कों से छिपाकर रखी। उन्होंने सोचा था, घर बेचकर फिर उसी मकान को किराए पर लेकर रहेंगे। ऐसी तरकीब अपनाएंगे कि उनकी मृत्यु तक लड़कों को इस बात का पता नहीं चलेगा।

पर लड़कों को पता चल ही गया। सभी पिता के पास आकर रो पड़े। विशेषकर तीनों बड़े बेटे शादीशुदा थे, उनमें से बाल-बच्चे वाले भी थे। उन्होंने मकान बेचने के मामले पर पिता का विरोध किया। इस कारण मकान बेचने की बात ठप्प पड़ गई।

अब रामसुन्दर को भिन्न-भिन्न जगहों से अधिक ब्याज पर थोड़ी-थोड़ी रकम उधार लेनी पड़ी। उसके फलस्वरूप गृहस्थी का पहिया चलना मुश्किल हो गया।

पिता का चेहरा देखकर निरुपमा सब समझ गई। बूढ़े बाप के पके बाल, सूखा चेहरा और सदा संकुचित भाव से अभाव और दुश्चिन्ता फूटी पड़ रही थी। पिता जब लड़की का अपराधी होता है और उस अपराध के लिए उसके मन में जो पश्चाताप होता है, वह छिपाने पर भी नहीं छिपता। समधी की अनुमति से लड़की की ससुराल में जब उससे थोड़ी-सी देर के लिए उनकी भेंट होती तो उनकी छाती कैसे फटती थी, इसका अनुमान उनकी हंसी देखकर किया जा सकता था।

पिता के दु:खी हृदय को शान्ति पहुंचाने के लिए नीरू थोड़े दिनों तक मैके जाकर रहने के लिए बहुत अधीर हो रही थी। पिता का उदास चेहरा देखकर अब वह उनसे दूर रहना चाहती थी। एक दिन रामसुन्दर से उसने कहा, ''पिताजी, मुझे एक बार घर ले चलिए।''

रामसुन्दर बोले, ''अच्छा।''

पर रामसुन्दर का कोई ज़ोर नहीं था। अपनी लड़की पर पिता का जो स्वाभाविक अधिकार होता है, वह भी जैसे उन्होंने शादी की नकद रकम के बदले में गिरवी रख दिया था। यहां तक कि बेटी से

मिलने के लिए भी बड़े ही संकोच से भेंट की भीख मांगते। कभी-कभी निराश होने पर भी कुछ कहने के लिए उनकी जबान नहीं खुलती थी।

पर लड़की जब खुद घर आना चाहती थी तब पिता होकर वह कैसे नहीं बुलाते? इसलिए लड़की को बुलाने के लिए समधी के पास दरख्वास्त पेश करने के पहले रामसुन्दर ने कितना अपमान और कितनी हानि उठाकर तीन हजार रुपयों का जुगाड़ किया था, वह इतिहास के अन्तराल में ही रहे तो ठीक है।

तीन हज़ार रुपयों के नोट रूमाल से लपेट कर और चादर में बांध कर रामसुन्दर समधी के घर जाकर बैठे रहे। पहले हंसकर टोले-मुहल्ले का हालचाल पूछा। हरेकृष्ण के घर में बहुत बड़ी चोरी हो गई थी, उसका पूरा विवरण सुनाया, नवीन माधव और राधामाधव इन दो भाईयों के बीच तुलना पर विद्या, बुद्धि, स्वभाव आदि में राधामाधव की बढ़ाई और नवीन माधव की निन्दा की; शहर में एक नई बीमारी फैली थी, उससे सम्बन्धित कुछ अजीबोगरीब बातें सुनाई, फिर अन्त में हुक्का रखकर बातों-बातों में बोले, "समधी जी, पहले के जो रुपये बाकी है, उनके बारे में रोज ही सोचता हूं कि चलने से पहले हाथ में कुछ ले चलूं, पर समय पर याद ही नहीं रहता। अरे भाई, बूढ़ा भी तो हो गया हूं।" इस तरह की बातों की एक लम्बी भूमिका बांधकर पसलियों की तीन हड्डियों की तरह तीन हजार के तीन नोट ऐसे भाव से निकाले, जैसे बिलकुल सहज भाव से ऐसा कर रहे हो।

सिर्फ तीन हजार के नोट देखकर राय बहादुर ठहाका मारकर हंस पडे। बोले, "रहने दो समधी। इसकी मुझे जरूरत नहीं।" फिर प्रचलित मुहावरे का प्रयोग करते हुए, समझाया कि थोड़ी-सी चीज लेकर अपने हाथ मैले नहीं करना चाहते।

इस घटना के बाद लड़की को अपने पास बुलाने की बात ज़बान पर आती भी तो कैसे, फिर भी

रामसुन्दर ने अपने मन को समझाया, कुटुम्ब के तौर-तरीकों पर किसी प्रकार की आपत्ति करना मुझे शोभा नहीं देता है। मन में उनकी गहरी ठेस लगी थी। बहुत देर चुपचाप रहने के बाद उन्होंने आहिस्ते से लड़की को घर बुलाने की बात उठाई।

रायबहादुर बिना कोई कारण बताए बोले, ''अभी नहीं जा सकती।'' यह कहकर किसी काम से वहां से चले गए।

लड़की को अपना चेहरा दिखाए बिना ही रामसुन्दर कांपते हाथों से उन नोटों को चादर में बांधकर घर लौट आए। मन ही मन प्रतिज्ञा की कि जब तक वह पूरी रकम अदाकर बिना संकोच अपनी लड़की का अधिकार का दावा नहीं कर सकेंगे, तब तब वे समधी के घर नहीं जाएंगे।

बहुत दिन बीत गए। निरुपमा आदमी पर आदमी भेजने लगी, पर बाप से भेंट ही नहीं हो पाती। अन्त में स्वाभिमान से उसने भी आदमी भेजना बन्द कर दिया। रामसुन्दर के मन में बड़ी चोट पहुंची, पर फिर भी वह समधी के घर नहीं गए।

आश्विन का महीना आया। रामसुन्दर मन ही मन बोले, ''इस बार दशहरे में बेटी को जरूर बुलाऊंगा, नहीं तो मैं... कहकर उन्होंने कोई कठिन प्रतिज्ञा कर ली।''

पंचमी या षष्ठी के दिन चादर के छोर में कुछ रुपये बांधकर रामसुन्दर फिर जाने के लिए तैयार हुए। तभी पांच साल का एक पोता आकर बोला, ''दादाजी, मेरे लिए गाड़ी खरीदने जा रहे हैं?'' वह बहुत दिनों से बच्चागाड़ी की जिद कर रहा था, पर किसी भी तरह उसका शौक पूरा करने का उपाय ही नहीं दीख रहा था। छ: साल की पोती आकर रोकर बोली, ''दशहरे के मेले में जाने के लिए मेरे पास एक भी अच्छा कपड़ा नहीं हैं।''

रामसुन्दर को यह बात मालूम थी, और तम्बाकू पीते-पीते बूढ़े ने इस पर बहुत सोचा भी था। रायबहादुर के घर से जब पूजा का निमन्त्रण आएगा तो उनकी बहुएं 'न' के बराबर गहने पहनकर गरीबों की तरह उनके घर जाएगी। यह बात सोच-सोच कर उन्होंने कितनी ही लम्बी सांसें ली होंगी। पर इस सोच से उनके बूढ़े माथे की रेखाएं थोड़ी और भी गहरी बनी थी। इसके सिवा और कुछ नहीं हुआ था।

गरीबी से दबे घर का रोना-धोना सुनकर बूढ़े रामसुन्दर अपने समधी के घर जा पहुंचे। आज उनके मन में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं था। दरवाजे पर खड़े चौकीदार एवं नौकरों पर बुझती नजर न डालकर रामसुन्दर इस तरह से उस घर पहुंचे, जैसे वह उनका अपना घर हो।

पर वहां पहुंचकर उन्होंने सुना, 'रायबहादुर घर पर नहीं है, थोड़ी देन प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।' मन की खुशी संभाल न पाने के कारण रामसुन्दर ने उसी समय अपनी बेटी से भेंट की। खुशी से दोनों की आंखों में आंसू झरने लगे। बाप भी रोता रहा, बेटी भी रोती रही। दोनों में से किसी के मुंह में कोई बोली नहीं। इसी तरह कुछ समय बीता। रामसुन्दर बोले, ''इस बार मैं तुझे घर ले चलूगां बेटी। अब कोई

झमेला नहीं होगा।''

ठीक उसी समय रामसुन्दर का बड़ा बेटा अपने दो छोटे लड़कों के हाथ पकड़ कमरे में दाखिल हुआ और बोला, ''पिताजी, आखिर आपने हम लोगों को सड़क पर बैठा ही दिया।''

रामसुन्दर अचानक आग-बबूला होकर बोले, ''तुम लोगों के होते क्या मैं नर्क जाऊं? तुम लोग मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करने देना चाहते?'' असल में बात यह थी कि रामसुन्दर ने अपना मकान बेच ही डाला था। लड़के इस बात को न जान पाएं, इसके लिए उन्होंने खूब सावधानी भी बरती थी, फिर भी वे इस बात को जान गए थे, यह जानकार रामसुन्दर बहुत नाराज हो गए।

उनके दोनों पोते उनके दोनों घुटने पकड़कर बोले, ''दादाजी, हमें गाड़ी नहीं खरीद देंगे?''

निरुपमा को अब तक सारी बात समझ में आ गई थी। उसने कहा, ''पिताजी, अगर आपने मेरे ससूर को एक भी पैसा और दिया तो आपकी सौगन्ध आप अपनी बेटी को नहीं देख पाएंगे।''

रामसुन्दर बोले, ''छि: बेटी ऐसा नहीं कहते। अगर मैं ये रुपये नहीं दूं तो इसमें मेरा और तेरा, दोनों का ही अपमान है।''

नीरू बोली, ''आपका रुपया देना ही अपमान है। आपकी लड़की की क्या कोई मर्यादा नहीं? मैं क्या सिर्फ रुपयों का थैला हूं कि जब तक रुपये हैं, तभी तक मेरी कीमत है। नहीं पिताजी नहीं, ये रुपये देकर आप मेरा अपमान मत कीजिए। इसके अलावा ये रुपये मेरे पति तो चाहते नहीं।''

रामसुन्दर बोले, ''रुपये न चुकाने पर ये लोग तुम्हें भेजेंगे नहीं बेटी।''

निरुपमा बोली, ''अगर नहीं भेजते तो आप क्या कीजिएगा, पिताजी? अब आप भी मुझे इनसे ले जाने के लिए मत कहिए।''

कांपते हाथों से नोट बंधे चादर को कन्धे पर रखकर रामसुन्दर चोर की तरह सबकी नजर बचाकर घर लौट गए।

रामसुन्दर रुपये लाए, और फिर लड़की के कहने पर बिना दिए ही चले गए, यह बात छिपी नहीं रही। स्वभाव से ही तांक-झांक करने वाली किसी नौकरानी ने किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर सारी बातें सुन ली थी और सुनने के बाद सीधे जाकर नीरू की सास को सारी बातें बता आई थी। सुनकर सास जल-भुन गई।

निरुपमा के लिए अब उसकी ससुराल कांटों की शैय्या बन गई। उसके पति का शादी के तुरन्त बाद ही डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप में दूसरे शहर में तबादला हो गया था। बुरी संगत में कहीं नीच बुद्धि न हो जाए, इस डर से ससुराल वालों ने निरुपमा और उसके पिता की भेंट पर भी पाबन्दी लगा दी।

इसी बीच नीरू बड़ी बुरी तरह बीमार पड़ गई। पर इसके लिए उसकी सास को पूरा दोष नहीं दिया

जा सकता। वही अपने शरीर के प्रति अत्यधिक लापरवाह बन गई थी। कार्तिक के महीने में जब नई ओस गिरती, उन दिनों भी निरुपमा बिस्तर के सिरहाने वाली खिड़की खुली छोड़कर सोती, सर्दी के मौसम में गर्म कपड़े नहीं पहनती, खाने-पीने में भी कोई नियम नहीं रखती। नौकरानी अगर भूलकर खाना नहीं देती तो नीरू खाने की बात याद भी नहीं दिलाती। उसके मन में यह बात थी कि वह दूसरे के घर के नौकर-चाकर, मालिक और मालकिन की कृपा पर जी रही है। निरुपमा के मन की यह दशा भी उसकी सास नहीं सह पाती। अगर खाने में नीरू थोड़ी-सी आनाकानी करती तो सास तुरन्त ताने देती, "नवाब की लड़की जो ठहरी। गरीब का खाना उसे कैसे भाएगा?"

कभी-कभी कहती, "दिन पर दिन कैसी हुई जा रही है, जैसे जली हुई लकड़ी।"

बीमारी ने जब टेढ़ा रूप ले लिया तब सास ने कहा, "यह तो बहू के नखरे हैं।"

अन्त में नीरू अपनी सास से बड़ी मिन्नतें कर बोली, "मां, एक बार पिताजी और भाइयों को देखने का मन हो रहा है।"

सास ने कहा, ''पीहर जाने के लिए बहाना बना रही है।''

कहने पर शायद कोई विश्वास नहीं करेगा कि जिस दिन नीरू ने अन्तिम सांस ली, उसी दिन डाक्टर ने उसे पहली बार देखा। वही डाक्टर का अन्तिम बार का देखना भी था।

घर की बहु मरी थी, इसीलिए बडी धूमधाम से उसकी अन्तिम क्रिया-कर्म हुआ। दशहरे में दुर्गा की प्रतिमा का विसर्जन रायबहादुर के यहां बड़े समारोह के साथ किया जाता था। दूर-दूर तक इसकी प्रशंसा होती थी। ठीक उसी तरह बड़ी बहू के मरने पर भी जो क्रिया-कर्म हुआ, उससे भी रायबहादुर की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। चन्दन की लकड़ी की चिता इसके पहले उस इलाके में लोगों ने देखी ही नहीं थी। इतने समारोह और खर्च से श्राद्ध करना सिर्फ रायबहादूर के लिए ही संभव था। सुनने में तो आया कि इस खर्च के चलते उन्हें थोडा कर्ज भी लेना पड़ा।

रामसुन्दर को सांत्वना देते वक्त, उसकी लड़की का दाह कर्म कितने भव्य ढंग से हुआ था, इसका सभी ने विस्तृत विवरण दिया।

दूसरी तरफ डिप्टी मजिस्ट्रेट की चिट्ठी आई, ''मैंने यहां सारा इन्तजाम कर लिया है, इसलिए चिट्ठी मिलते ही नीरू को मेरे पास भेज दीजिए।''

इधर रायबहादूर की पत्नी ने लिखा, ''बेटे तुम्हारे लिए एक और रिश्ता तय किया गया है। चिट्ठी मिलते ही चले आओ।''

इस बार की शादी बीस हजार रुपये नकद – वह भी हाथ के हाथ की बात पर तय की गई थी।

मुन्ना बाबू की वापसी

जिन दिनों राईचरण बाबुओं के घर नौकरी पर आया था, उसकी उम्र सिर्फ बारह साल की थी। उसका घर जैसौर में था। लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आंखें, सांवला छरहरा बदन। जाति से वह कायस्थ था। राईचरण जहाँ नौकरी करता था, वें लोग भी कायस्थ ही थे। बाबू के एक साल के बच्चे की देखभाल करना ही उसका असली काम था।

धीरे-धीरे वह बच्चा राईचरण की गोद छोड़ कर स्कूल गया, फिर स्कूल से कालेज, और अन्त में कालेज की पढ़ाई पूरी कर मुन्सिफ बन गया। राईचरण अब उसका नौकर था।

राईचरण पर एक और आदमी का भी हुक्म चलता था। वह थी मालिक की नई दुल्हन। इसके कारण उसके अनुकूल बाबू पर राईचरण का जितना अधिकार था, वह सब धीरे-धीरे मालकिन के हाथों में चला गया।

पर जिस तरह से मालकिन ने राईचरण का पहले का अधिकार छीन लिया था, उसी तरह कुछ नया अधिकार राईचरण को देकर उसकी कमी पूरी कर दी थी।

हाल में अनुकूल बाबू के घर पुत्र पैदा हुआ था- और राईचरण ने सिर्फ अपने प्रयत्न और अध्यवसाय से उस पर पूरी तरह अधिकार कर लिया था।

उस नन्हें से बच्चे को राईचरण इतने उत्साह से झूला झुलाता, दोनों हाथों से पकड़कर आकाश में उछालता, उसके मुंह के सामने अपना सिर झकझोरता। जवाब की आशा किए बिना अनर्गल, अर्थहीन बातें इतने सुरीले ढंग से बोलता कि राईचरण को देखते ही बच्चा खुशी से उछल उठता।

जब वह नन्हा-सा बच्चा घुटनों के बल चौखट पार करता और कोई उसे पकड़ने आता तो वह खिलखिला कर हंसता हुआ किसी सुरक्षित जगह पर छिपने की कोशिश करता। राईचरण कहता "मां जी, बड़ा होकर आपका लड़का जज बनेगा, पांच हजार रुपये कमाएगा।"

दुनिया में और कोई भी बच्चा इस उम्र में चौखट लांघने जैसा असम्भव काम कर सकता है, यह राईचरण के समझ के परे की बात थी। लेकिन भविष्य में जो बच्चा जज बनेगा उसके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

और जब बच्चा डगमगा कर चलना सीख गया, तो ऐसा लगा जैसे राईचरण के लिए कोई आश्चर्य की बात हुई हो, और जब उस बच्चे ने मां को मां, बुआ को बुआ और राईचरण को चन्ना कहकर पुकारना सीखा तब राईचरण इस अनहोनी को होते देखने की बात सबसे कहता फिरने लगा।

वह कहता, "ताज्जुब की बात, जानते हैं, क्या है? नन्हा मां जी को मां, बुआ को बुआ कहने लगा है पर मुझे वह 'चन्ना' कहकर पुकारता है। सचमुच, बच्चे के दिमाग में यह बात आई कैसे, कहना बड़ा मुश्किल है।"

अवश्य ही कोई वयस्क व्यक्ति किसी बच्चे की इस तरह की अस्वाभाविक प्रतिभा का परिचय देते हुए यह नहीं कहता कि बच्चा आगे चलकर जज बनेगा। अगर कोई ऐसा करे तो सुनने वालों को उस पर अवश्य सन्देह होगा।

कुछ दिनों बाद राईचरण को दांतों में रस्सी पकड़कर घोड़ा बनना पड़ता और कभी-कभी उस्ताद बनकर बच्चे से कुश्ती लड़नी पड़ती। अनुकूल बाबू अपने बच्चे के लिए कलकत्ता से एक बच्चा-गाड़ी खरीद लाए थे। साटिन की कमीज और सिर पर जरी की टोपी डाले, बांहों में सोने के कंगन और पैरों में पाजे पहनाकर राईचरण रोज दोनों शाम बच्चे को बच्चा-गाड़ी में बैठा कर घुमाने ले जाया करता था।

बरसात का मौसम आया। भूखी पद्मा नदी धीरे-धीरे एक-एक करके गांव, बगीचे और खेतों को अपनी भूख का शिकार बनाने लगी। नदी के किनारे रेतीली जमीन पर उगी झाऊ की झाड़ियां भी पानी के नीचे डूब गई। नदी के किनारे टूटने की धपाधप की आवाज और नदी का गर्जन दसों दिशाओं में गूंजने लगा। नदी में वगे से बहते पानी का झाग बीच-बीच में पानी के बहाव की तीव्रता को और भी भयानक रूप देने लगा।

शाम को आकाश में बादल छाए हुए थे, लेकिन पानी बरसने की आशंका नहीं थी। ऐसे समय में राईचरण का छोटा-सा मालिक किसी भी हालत में घर में टिकना नहीं चाह रहा था। वह अपने-आप

ही अपनी गाड़ी पर जम कर बैठ गया। राईचरण धीरे-धीरे ठेलता हुआ नदी के किनारे धान के खेत के पास जाकर खड़ा हुआ। नदी में एक भी नाव नहीं थी। खेत में भी कहीं कोई दिखाई नहीं दे रहा था। उस पार बादलों की क्रीड़ा- उनका आपस में मिलना और फिर अलग होना दिखाई पड़ रहा था। उस पार जनहीन रेतीले किनारे पर शब्दहीन पर दीप्त समारोह के साथ सूर्यास्त का आयोजन हो रहा था। उस स्तब्धता को तोड़ते हुए बच्चा राईचरण को इशारा कर बोला, 'चन्ना फू'।

थोड़ी दूर पर कीचड़-भरी गीली जमीन पर कदम्ब का एक बड़ा पेड़ था, जिस पर फूल खिले हुए थे। बच्चे की लोभी दृष्टि उन पर जाकर पड़ी थी। दो-चार दिन पहले की ही बात थी, राईचरण ने कदम्ब के फूलों को पतली लकड़ी में गूंथ कर मुन्ने को एक गाड़ी बना कर दी थी। कदम्ब के फूल की उस गाड़ी को रस्सी में बांधकर खींचने में मुन्ने को इतना आनन्द होने लगा था कि उस दिन राईचरण के लगाम डालने की भी जरूरत नहीं पड़ी थी, घोड़े से राईचरण एक ही बार में साईस का पद पा गया था।

राईचरण का मन कीचड़ में से होकर फूल तोड़ने का नहीं था। इसलिए वह जल्दी से दूसरी तरफ उंगली से इशारा कर बोला, "देखो, देखों वह चिड़िया उड़ गई। आ जा चिड़िया आ, आ जा।" मुंह में इसी तरह से कुछ-कुछ तोलता हुआ राईचरण जल्दी-जल्दी गाड़ी को नदी से दूर ठेलने लगा।

पर जिस बच्चे के भविष्य में जज बनने की सम्भावना है, उसे इतनी आसानी से तो बहलाया नहीं जा सकता था, और वह भी तब जब चारों तरफ उनकी दृष्टि को आकर्षित करने लायक कुछ और नहीं था। फिर काल्पनिक चिड़िया से ज्यादा देर तक बच्चे को वैसे भी नहीं भुलाया जा सकता।

राईचरण बोला, "तो फिर तुम चुप-चाप गाड़ी में बैठे रहो, मैं आकर झटपट फूल तोड़ लाता हूं। पर खबरदार! पानी के पास मत जाना।" इतना कहकर राईचरण घुटनों तक धोती उठाकर कदम्ब के पेड़ की तरफ चला गया।

राईचरण ने बच्चे को पानी के पास जाने को मना किया था, इसलिए तुरन्त उसका मन कदम्ब के फल की तरफ से पानी की तरफ और भी चला गया बच्चे ने देखा, नदी का पानी उछल-उछल कर तेजी से भाग रहा है, जैसे कोई बड़ी शैतानी करके एक लाख बच्चों का प्रवाह शोर मचाता हुआ किसी एक बड़े राईचरण की नजर बचाकर निषिद्ध जगह की ओर भाग रहा हो।

पानी की तरंगों के बारे में ऐसी कल्पना करने पर मानव-शिशु का मन चंचल हो उठा। वह धीरे-से गाड़ी पर से उतरा और नदी के किनारे चला गया। उसने एक लम्बी पतली-सी लकड़ी उठाई और उसे ही बंशी मान झुक कर मछली पकड़ने की तैयारी करने लगा। नदी की नटखट जल परियां अपनी अस्पष्ट भाषा में इस बच्चे को बार-बार अपने खेल में शामिल होने के लिए बुला रही थीं।

एक बार झप से एक आवाज हुई, लेकिन बरसात के मौसम में पद्मा नदी के किनारे ऐसी कितनी ही आवाजें होती रहती है।

राईचरण ने आंचल भर कर कदम्ब के फूल तोड़े। पेड़े से उतर कर वह हंसता हुआ गाड़ी के पास आया, तो वहां पर कोई नहीं था। उसने घबराकर चारों ओर नजर डाली। किसी का कोई निशान तक नहीं था।

अब तो राईचरण के शरीर का सारा खून जमकर बर्फ बन गया। सारी दुनिया नीरस और धूमिल हो उठी! टूटे दिल से छाती चीर देने वाली आवाज में उसने पुकारा, "बाबू! मुन्ना बाबू! राजा बाबू। सोना भैया मेरे।"

पर दूसरी तरफ से 'चन्ना' कहकर किसी बच्चे की खिलखिलाती हुई हंसी की आवाज नहीं सुनाई पड़ी। सिर्फ पद्मा नदी, पहले की ही तरह छलछलाती हुई भागी जा रही थी, जैसे उसे कुछ भी नहीं मालूम। दुनिया की इन छोटी घटनाओं पर ध्यान देने के लिए उसके पास जरा भी समय नहीं था।

शाम घिर आई। मुन्ने की मां ने बेचैन होकर चारों तरफ अपने आदमी दौड़ा दिए। हाथ में लालटेन लिए जब लोग नदी के किनारे पहुंचे तो देखा, रात की तूफानी हवा की तरह राईचरण चारों तरफ 'बाबू, मुन्ना बाबू मेरे' कहकर टूटी आवाज से फिर रहा है। अन्त मे जब राईचरण को घर लाया गया तो वह मालकिन के पैरों पर गिर पड़ा। उससे जितनी बार पूछा गया, वह रोता हुआ बोला, "मां जी, मैं कुछ भी नहीं जानता।"

यद्यपि सभी को यह मालूम था कि यह काम पद्मा नदी का ही है, फिर भी लोगों का शक उन सपेरों पर भी हो गया, जिन्होंने पिछले कुछ दिनों से गांव के एक छोर पर डेरा डाल रखा था। पर मालकिन के मन में यह शक पैदा हुआ कि हो न हो राईचरण ने ही मुन्ने को चुरा लिया है। यहां तक कि राईचरण को बुलाकर वह बड़ी मिन्नतें कर बोली, "तू मेरे बच्चे को लौटा दे-तू जितने रुपये मांगेगा, मैं दूंगी।" यह सुनकर राईचरण सिर पीट-पीट कर रोने लगा। मालकिन ने उसे घर से निकाल दिया।

अनुकूल बाबू ने अपनी पत्नी के मन से राईचरण के प्रति गलतफहमी दूर करने की पूरी कोशिश की। वह बोले, ''तुम्ही बताओ। राईचरण आखिर इतना जघन्य अपराध क्यों कर करेगा?''

पत्नी बोली, ''क्यों? मुन्ने के बदन पर सोने के गहने नहीं थे?''

(2)

राईचरण अपने घर वापस चला गया। इतने दिनों में राईचरण के घर कोई बच्चा नहीं हुआ था, होने की उम्मीद भी नहीं थी। पर भगवान की कृपा से साल खत्म होने के पहले ही राईचरण की पत्नी ढलती उम्र में एक लड़के को जन्म देकर खुद चल बसी।

इस नवजात शिशु के प्रति राईचरण के मन में अजीब-सी विद्वेष की भावना जगी। उसे लगा, यह लड़का छल से उसके मुन्ना बाबू की जगह छीनने के लिए आया है। उसे लगा, मालिक के एक-मात्र लड़के का पानी में डुबाकर खुद औलाद का सुख भोगना महापाप है। राईचरण की विधवा बहन अगर नहीं होती तो यह बच्चा इस दुनिया में अधिक दिनों तक जी भी नहीं पाता।

ताज्जुब की बात तो यह थी कि कुछ दिनों के बाद यह बच्चा भी घुटनों के बल चौखट पार करना सीख गया और किसी का कोई कहना न मान तरह-तरह की शैतानी करने लगा। यहां तक कि वह रोता और हंसता भी मुन्ना बाबू की तरह ही था। कभी-कभी उसका रोना सुनकर राईचरण का दिल जोर से धड़क उठता। उसे लगता, जैसे मुन्ना बाबू किसी दूर अनजाने प्रदेश में अपने चन्ना को खोकर रो रहा है।

फेलना... राईचरण की बहन ने इस बच्चे का नाम यही रखा था। फेलना यानी फालू। इसने भी एक दिन बुआ को बुआ कहकर पुकारा। वहीं परिचित पुरानी आवाज सुनकर राईचरण को लगा, ''इसके माने यह है तो मुन्ना बाबू मेरा मोह छोड़कर कहीं नहीं गया। उसने मेरे ही घर जन्म लिया है।''

राईचरण के इस प्रकार के विश्वास के पीछे कुछ यथार्थ का तर्क भी था। पहला तो यह कि उसके इस बच्चे ने मुन्ना बाबू की मृत्यु के बाद जन्म लिया था। दूसरा, इतने सालों के बाद अचानक उसकी पत्नी के गर्भ से सन्तान पैदा हुई, जो पत्नी की अपनी क्षमता के बस पर सम्भव नहीं था। और तीसरा कि फेलना भी घुटनों के बल चलता था, चलते समय उसके भी पैर डगमगाते थे, और यह भी कि वह भी मुन्ना की तरह बुआ को बुआ कहता था। जिन लक्षणों के रहने पर भविष्य में जज बना जा सकता है, वे सारे के सारे लक्षण इस बच्चे में भी थे।

तभी एकाएक राईचरण का अपने मालकिन के उस भयानक सन्देह की बात याद पड़ गई। मन ही मन राईचरण को आश्चर्य हुआ, 'अहा, मां का मान जान गया था कि उसके बच्चे को किसने चुराया था।' इसके बाद ही उस बच्चे के प्रति अब तक की अवहेलना के लिए राईचरण ने मन ही मन बड़ा पश्चाताप किया। अब वह बच्चे से हिल-मिल गया।

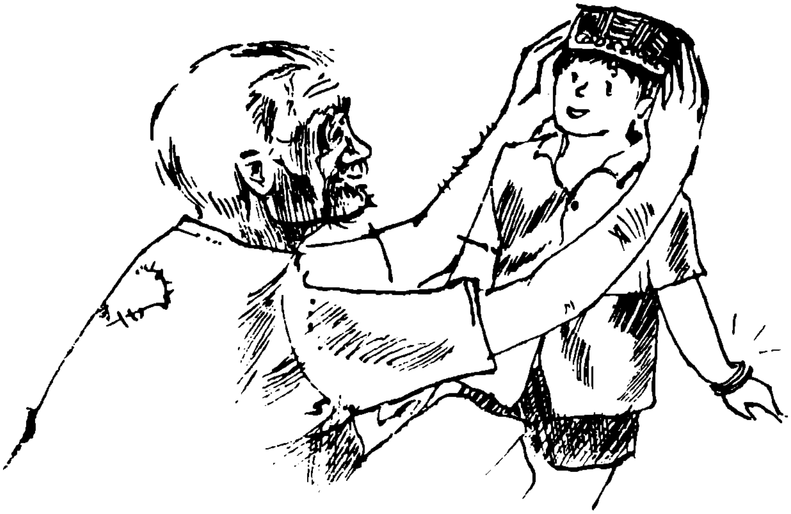

अब से राईचरण फेलना का किसी बड़े घर के लड़कों की तरह पालन-पोषण करने लगा। उसे साटिन की कमीज खरीद कर दी, जरी की टोपी बनवा दी। मृत पत्नी के सोने के जेवर तुड़वा कर हाथ के कंगन बनवा दिए। वह मुहल्ले के किसी बच्चे के साथ उसे खेलने नहीं देता था। रात-दिन उस बच्चे के साथ वह खुद ही खेलने लगा। मौका मिलने पर उसे मुहल्ले के बच्चे 'नवाब का बेटा' कहकर चिढ़ाते। गांव के लोग-बाग भी राईचरण के इस पागलपन को देखकर हैरान रह जाते।

फेलना की जब पढ़ने की उम्र हुई, राईचरण अपनी सारी खेती-बाड़ी जमीन-जायदाद, जो कुछ भी था, सारा बेच-बाचकर कलकत्ता चला गया। वहां उसने बड़े कष्ट से अपने लिए एक नौकरी का जुगाड़ कर फेलना को स्कूल में भर्ती करा दिया। खदु जैसे-तैसे रहकर भी उसने लड़के को अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा और अच्छी शिक्षा देने में, कोई कसर नहीं रखी। राईचरण मन ही मन कहता, 'बेटे' इतने प्यार से मेरे घर आए हो, इसलिए तुम्हारी देखभाल में कोई कमी हो, ऐसा नहीं हो सकता।'

इसी तरह से बारह साल बीत गए। लड़का पढ़ने लिखने में अच्छा था। देखने में भी भला था। शरीर हृष्ट-पुष्ट था। सांवला सलौना रंग था... बालों को एक खास अदा से संवारता। स्वभाव से आराम पसन्द और शौकीन। बाप को बाप की तरह नहीं समझता था, क्योंकि राईचरण स्नेह में पिता, पर सेवा में उसके नौकर जैसा था। राईचरण की सबसे बड़ी गलती यह थी कि उसने खुद सबसे इस बात को छिपाकर रखा कि वह फेलना का पिता है। जिस छात्रावास में फेलना रहता था, वहां के विद्यार्थी पूर्वी बंगाल के राइचरण को लेकर हमेशा मजाक किया करते थे। और, पिता की गैर मौजूदगी में फेलना उस मजाक में भाग नहीं लेता था, वह कहना मुश्किल है। फिर भी निरीह भोले-भाले बाल-सुलभ स्वभाव के

राईचरण को सभी बच्चे बड़ा प्यार करते थे, और फेलना भी उसे प्यार करता था। लेकिन जैसा मैंने पहले ही कहा है, ठीक बाप की तरह नहीं, फेलना के इस प्यार में थोड़ी बहुत दया का भाव भी मिला हुआ होता।

राईचरण अब बूढ़ा हो चला था। उसका नया मालिक उसके काम-काज में हर वक्त कोई न कोई गलती निकालता रहता। सच तो यह था कि राईचरण का शरीर भी अब कमजोर हो चला था। अब काम में वह पहले जैसा जी नहीं लगा पाता। कोई-कोई काम भूल भी जाता। पर जो व्यक्ति नौकर को पूरी तनख्वाह देता है, वह आखिर बुढ़ापे का रोना क्यों सुने? दूसरी तरफ, जमीन-जायदाद बेचकर राईचरण जो रुपये ले आया था, वे भी अब खत्म हो रहे थे। इन दिनों फेलना की अक्सर कपड़े-लत्ते को लेकर खिट्खिट् किया करता। उसकी पैसों की मांग की बढ़ती जा रही थी।

(3)

एक दिन अचानक राईचरण ने अपना काम छोड़ दिया और फेलना के हाथ में कुछ रुपये देकर बोला, "मुझे बड़ा जरूरी काम आ पड़ा है। मैं थोड़े दिनों के लिए गांव जा रहा हूं।" इतना कहकर राईचरण सीधा बारासात में पहुंच गया। उन दिनों अनुकूल बाबू वहां मुन्सिफ के पद पर थे।

अनुकूल बाबू की कोई दूसरी सन्तान नहीं हुई थी। उनकी पत्नी भी अभी तक बेटे का गम पाले हुए थी।

एक दिन अनुकूल बाबू कचहरी से लौटकर आराम कर रहे थे, और उनकी गृहिणी जिसने एक साधू से सन्तान-प्राप्ति के लिए बहुत पैसे देकर कोई जड़ी-बूटी खरीदी थी, अब उनका आशीर्वाद मांग रही थी। इसी समय आंगन में एक आवाज सुनाई पड़ी, "प्रणाम मां जी।"

अनुकूल बाबू बोले, "कौन है रे?"

राईचरण ने आगे बढ़कर प्रणाम किया। बोला, "मैं राईचरण हूं, बाबू।"

बूढ़े राईचरण को देखकर अनुकूल बाबू का हृदय द्रवीभूत हो उठा। उन्होंने उसका हालचाल पूछा और फिर काम पर रखने का प्रस्ताव भी रखा।

राईचरण म्लान-सी हंसी हंसकर बोला, "मैं एक बार मांजी को प्रणाम करना चाहता हूं।"

अनुकूल बाबू राईचरण को साथ लेकर अन्दर गए। मालकिन कोई प्रसन्न मन से राईचरण से नहीं मिली, पर राईचरण ने उस तरफ ध्यान नहीं दिया और हाथ जोड़कर बोला, "मालिक, मांजी तुम्हारे लड़के को मैंने ही चुराया था, पद्मा नदी ने नहीं। यह किसी दूसरे का नहीं, मेरे जैसे बेईमान का की काम था...।"

अनुकूल बाबू बोले, "क्या बकता है रे तू? कहां है वह?"

जी, मेरे ही पास है। परसों मैं उसे यहां पहुंचा दूंगा।

उस दिन रविवार का दिन था। कचहरी बन्द थी। सुबह से ही पति-पत्नी उत्सुक होकर राह देख रहे थे। दस बजे फेलना को लेकर राईचरण वहां पहुंचा।

अनुकूल बाबू की पत्नी ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। कुछ भी सोच-विचार किए बिना उन्होंने उस बालक को गोद में बैठाकर सहलाया, फिर सूंघा और व्याकुल होकर अतृप्त आंखों से उसे देख-देखकर कभी रोने तो कभी खुशी से हंसने लगी। लड़का वाकई देखने में अच्छा था। कपड़े-लत्तों में भी गरीबी की कोई छाप नहीं थी। चेहरे पर लजीला-सा भाव था। बड़ा ही प्रिय और विनीत स्वभाव का लड़का था। इस लड़के को देखकर अनुकूल बाबू के हृदय में भी स्नेह उमड़ पड़ा।

फिर भी अविचलित भाव से अनुकूल बाबू बोले, "राईचरण इसका कोई प्रमाण है तुम्हारे पास?"

राईचरण बोला, "ऐसे काम का क्या सबूत हो सकता है बाबू? मैंने आपका बच्चा चुराया था, यह बात सिर्फ भगवान को ही मालूम है। दुनिया में और किसी को यह बात मालूम नहीं।"

लड़के को देखते ही अनुकूल बाबू की पत्नी ने उसे जिस आग्रह से अपनाया उसे देखते हुए अनुकूल बाबू को भी प्रमाण ढूंढने की कोई कोशिश निरर्थक लगी। जो भी हो, राईचरण की बात पर विश्वास कर लेना ही ठीक था। इसके अलावा राईचरण को ऐसा लड़का मिलता भी कहा से, और बूढ़ा नौकर बिना वजह उन्हें धोखा भी क्यों देगा?

बच्चे से बातचीत के दौरान अनुकूल बाबू को पता चला कि वह बचपन से राईचरण के ही साथ रहा है और राईचरण को ही अपना पिता समझता आया है। पर राईचरण ने कभी उसके साथ पिता जैसा व्यवहार नहीं किया। उसमें नौकर जैसा ही भाव रहा है।

अनुकूल बाबू अपने मन के सन्देह को दूर भगाकर बोले, "लेकिन एक बात है राईचरण। तू फिर कभी हमारी छाया तक नहीं छूने आएगा। समझा?"

राईचरण हाथ जोड़कर गद्‌गद कंठ से बोला, "मालिक बुढ़ापे में मैं और कहां जाऊंगा?"

मालकिन बोली, "अहा! इसे रहने दीजिए। मेरे बच्चे का भला होगा। मैंने उसे माफ किया।"

पर न्याय में विश्वास रखने वाले अनुकूल बाबू बोले, "उसने जैसा काम किया है, उसे माफ नहीं किया जा सकता।"

राईचरण ने अनुकूल बाबू के पैर पकड़ लिए। बोला, "मैंने कुछ भी नहीं किया बाबू। यह सब ईश्वर का काम है।"

अपना पाप भगवान के कंधों पर लादते देखकर अनुकूल बाबू और भी नाराज हो गए। बोले, ''जिसने इतने बड़े विश्वासघात का काम किया है, उस पर विश्वास करना उचित नहीं है।''

राईचरण मालिक के पैर छोड़ कर बोला, ''वह मैं नहीं हूं, मालिक।''

''तो फिर कौन है?''

''मेरा भाग्य''

पर इस तरह की कैफियत से कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति कहीं सन्तुष्ट होता?

राईचरण बोला, ''बाबू। इस दुनिया में मेरा और कहीं कोई नहीं।''

फेलना ने जब सुना कि वह मुन्सिफ का लड़का है और इतने दिनों तक राईचरण ने उसे चुरा कर रखा और अपना लड़का बताकर उसका अपमान किया, तो मन ही मन वह भी नाराज हो गया। फिर भी उदार भाव दिखाकर बोला, ''पिताजी इसे माफ कर दीजिए। घर में अगर नहीं रहने दे सकते तो उसके लिए महीने की कोई रकम बांध दीजिए।''

इसके बाद राईचरण ने कुछ कहे-सुने बिना एक बार बेटे की ओर देखा, फिर सबको प्रमाण किया और उसके बाद दरवाजे से बाहर निकलकर असंख्य लोगों की भीड़ के बीच कहीं खो गया। महीने के अन्त में जब राईचरण के घर के पते पर अनुकूल बाबू ने कुछ रुपये भेजे तो वे रुपये कुछ दिनों में वापिस लौट आए। वहां राईचरण नाम का कोई आदमी नहीं रहता था।

सम्पत्ति समर्पण

वृन्दावन कुंडु गुस्से से आग-बबूला होकर अपने बाप से जाकर बोला, "मैं अभी जा रहा हूं।" पिता यज्ञनाथ कुंडु बोले, "बेईमान, बचपन से तुझे खिलाने-पिलाने में खर्च हुआ है उसे सधाने का नाम नहीं, ऊपर से गर्मी दिखाता है।"

यज्ञनाथ के घर में यो खाने-पहनने का जो स्तर था, उससे यह तो साफ जाहिर था कि खर्च कुछ अधिक नहीं था। पुराने समय के ऋषि मुनि आहार और वस्त्र के मामले में बहुत कम में जीवन-यापन करते थे, यज्ञनाथ के व्यवहार से भी ऐसा ही लगता था। हां, सम्पूर्ण सिद्धि उन्हें नहीं मिली थी, उसका कारण कुछ तो आधुनिक समाज का दोष था और कुछ प्रकृति के कुछ गलत नियमों को बरतने के कारण।

लड़का जब तक अविवाहित था, उसने सहा, पर शादी के बाद खाने-पहनने के मामले में बाप के विशुद्ध आदर्श के साथ लड़के के आदर्श मेल नहीं खा पाए। देखने में आया, बेटे का आदर्श धीरे-धीरे आध्यात्मिकता से हट कर भौतिकता की ओर बढ़ रहा है। शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, तृष्णा से कातर पार्थिव समाज के अनुकरण के कारण कपड़े का नाम और आहार का परिमाण धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा था।

इस बात को लेकर बाप-बेटे में अक्सर बहस हो जाती। अन्त में वृन्दावन की पत्नी जब बहुत बीमार हुई और कविराज ने कीमती दवा बतलाई, तो यज्ञनाथ ने कविराज को अनाड़ी बतलाकर तुरन्त उसे विदा कर दिया। वृन्दावन ने पहले तो पिता के आगे हाथ-पाव जोड़े, उसके बाद नाराजगी भी प्रकट की पर कोई लाभ नहीं हुआ। पत्नी हो जाने पर वृन्दावन ने पिता को हत्यारा कहकर गाली दी।

बाप ने कहा, "क्यों दवा खाकर कोई मरता नहीं? कीमती दवा खाने से ही अगर कोई जी जाता तो बड़े लोग किसी दुख से मरते? इसी तरह से तेरी मां मरी थी और नानी भी, अपनी पत्नी मरी तो क्या फर्क पड़ गया?"

वस्तुत: वृन्दावन यदि शोक में अंधा न होकर स्थिर मन से विचार करता तो पिता की इस बात से उसे थोड़ा सन्तोष मिलता। उसकी मां या नानी, किसी ने भी मरते समय दवा नहीं पी थी। इस घर की यही पुरानी रीत थी। पर आधुनिक युग के लोग पुरानी पद्धति से मरना भी तो नहीं चाहते। जिस समय की बात मैं बता रहा हूं, उन दिनों अंग्रेज इस देश में नए-नए आए थे, लेकिन उस समय भी पुराने लोग उस समय के लोगों के व्यवहार पर हतप्रभ होकर और अधिक जोर से हुक्का गुड़गुड़ाते।

खैर! उस समय का आधुनिक वृन्दावन उस समय के पुराने यज्ञनाथ के साथ झगड़ा कर बोला, "मैं जाता हूं।"

बाप ने तुरन्त सबके सामने उसे जाने की अनुमति दी और बोले, "मैंने यदि वृन्दावन को कभी एक पैसा भी दिया तो मैं गौर रक्त बहाने का अपराधी बनूंगा।"

वृन्दावन ने भी सबसे सामने यज्ञनाथ के पैसे लेने को मां का रक्त बहाने-सा पाप होने की घोषणा की।

इसी के बाद पिता-पुत्र में विच्छेद हो गया।

बहुत दिनों तक शान्ति के बाद इस तरह के एक छोटे-मोटे विद्रोह से गांव के लोग खुश हो उठे। विशेषकर, यज्ञनाथ द्वारा लड़के को उत्तराधिकारी से वंचित किए जाने के बाद सभी लोग अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञनाथ के पुत्र-विच्छेद किए जाने का असहनीय दुख दूर करने की कोशिश करने लगे। सबने कहा, "मामूली-सी एक पत्नी के लिए बाप से लड़ना इसी युग में सम्भव है।"

लोगों ने एक बहुत बड़ा तर्क भी रखा। कहा, "एक पत्नी अगर मर गई है तो थोड़े ही दिनों मे दूसरी का जुगाड़ हो सकता है, पर बाप के गुजर जाने से तो सिर फोड़ने पर भी दूसरा बाप नहीं मिलता।" तर्क बड़ा ही मजबूत था, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर मेरा विश्वास है कि वृन्दावन जैसा लड़का इस तर्क

को सुनकर पश्चाताप करना तो दूर, अपनी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता।

यह भी नहीं लगता कि वृन्दावन के चले जाने से उसके पिता के मन में बहुत कष्ट हुआ। वृन्दावन के चले जाने से एक तो खर्च कम हुआ, दूसरे यज्ञनाथ के मन से एक बहुत बड़ा भय चला गया। वह मन ही मन इस बात से घबराए रहते थे कि मौका पाकर वृन्दावन उन्हें जहर न खिला दे। जो थोड़ा-बहुत वह खाते थे, उसके साथ जहर की कल्पना हमेशा जुड़ी रहती थी। बहू के मरने पर यह आशंका थोड़ी-बहुत कम हुई थी। अब पुत्र के चले जाने से तो वह एक तरह से निश्चिंत ही हो गए।

अब यज्ञनाथ के मन में सिर्फ एक कष्ट रह गया था। वृन्दावन जाते समय उनके चार साल के पोते गोकुलचन्द्र को साथ ले गया था। गोकुल के खाने-पीने का खर्च कम था, इस लिए उसके प्रति यज्ञनाथ का स्नेह थोड़ा-बहुत निष्कलंक था। फिर भी वृन्दावन जब उसे ले ही गया तब उस सच्चे शौक में भी क्षण भर के लिए उनके मन में जमा खर्च का हिसाब आया था। दोनों अगर चले गए तो महीने का खर्च कितना घटा और साल में कितने रुपये बचे, फिर बचे हुए उन रुपयों पर कितना ब्याज आया, यज्ञनाथ इसका हिसाब लगाने लगे।

फिर भी गोकुलचन्द्र के उत्पात के बिना सूने घर में टिकना मुश्किल हो गया। आजकल यज्ञनाथ जब पूजा करने बैठते तो उन्हें कोई तंग नहीं करता, खाने के समय कोई उनसे छीनकर खाता नहीं था और हिसाब लिखते समय कलम-दवात लेकर भागने वाला भी कोई नहीं था, उसके कारण कुछ अजीब-सा लगता। बिना किसी झंझट-झमेले के नहाने और खाने से यज्ञनाथ का मन व्याकुल हो उठता। उन्हें लगता कि मरने के बाद ही आदमी को इस तरह के उत्पातहीन सूनेपन को अनुभव होता होगा, विशेषकर बिस्तर पर बिछे गद्दे पर पोते द्वारा किए गए छेद और बैठने की चटाई पर उस कलाकार द्वारा बनाए गए स्याही के निशाल को न देखकर उनका हृदय भी अशान्त हो उठता। उस शैतान ने पहनने की धोती दो साल में ही पहनने लायक नहीं छोड़ी थी, इसलिए अपने दादाजी से उसे बड़ी डांट खानी पड़ी थी। अब सोने के कमरे में सौ जगह सिलाई की हुई, फटी-मैली छीड़ी हुई धोती के टुकड़े को देखकर उनकी आंखों में आंसू भर आए। उस फटे हुए कपड़े को दिये की बत्तियां बनाकर या गृहस्थी के किसी और काम में न लगाकर उन्होंने बड़े यत्न से उसे सन्दूक में उठाकर रख दिया और मन ही मन शपथ ली कि अगर कभी गोकुल लौट आया तो अगर एक साल में भी मेरी एक धोती फाड़ डाले, फिर भी मैं उसे कभी नहीं डाटूंगा। पर गोकुल लौटकर आया नहीं और यज्ञनाथ की उम्र भी जैसे पहले से और जल्दी-जल्दी बढ़ने लगी। सूना घर दिन प्रतिदिन और भी सूना लगने लगा।

यज्ञनाथ के लिए अब घर मे टिकना मुश्किल हो गया। दोपहर को जब सभी संभ्रान्त वक्ति खाना खाने के बाद सोते, उस समय यज्ञनाथ हाथ में हुक्का लिए एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में घूमते रहते। उनके इस तरह से चुपचाप मध्यान्ह-भ्रमण के समय सड़क पर खेलते हुए बच्चे खेल छोड़कर किसी सुरक्षित जगह में छिपकर यज्ञनाथ की कंजूसी पर वहां के स्थानीय कवि की रची हुई विभिन्न मजेदार कविताओं का ऊंची आवाज में पाठ करते। यज्ञनाथ का नाम जुबान पर लाने से कहीं दिन का खाना ही

न जुटे, इस डर से यज्ञनाथ के बाप द्वारा दिया हुआ नाम लेने की कोई हिम्मत ही नहीं करता। जिसकी जो मर्जी होती, उसका नया नामकरण कर देता। बूढ़े लोग उन्हें 'यज्ञनाथ' कहकर पुकारते पर बच्चे न जाने क्यों उन्हें 'चमगादड़' कहकर पुकारते। इसकी वजह क्या थी–यह किसी को पता नहीं था। हो सकता है, उनके रक्तहीन सूखे चमड़े के साथ उस चमगादड़ नामक प्राणी का कोई सादृश्य रहा हो।

(2)

एक दिन की बात है। यज्ञनाथ रोज की तरह दोपहर को घूमने निकले थे। आम के पेड़ की ठंडी छांह में चलते-चलते उन्होंने देखा कि एक अपरिचित बालक गांव के बच्चों का सरदार बनकर किसी नई किस्म की शैतानी के लिए उन्हें निर्देश दे रहा था। दूसरे बच्चों ने उसके चरित्र के बल और उसकी कल्पना पर अभिभूत पूरे मन से उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

दूसरे बालक बूढ़े को देखकर जिस तरह खेल छोड़कर भाग जाते, इस बच्चे ने वैसा नहीं किया, बल्कि यज्ञनाथ के पास आकर अपनी चादर झाड़ने लगा। चादर में से छूटते ही एक गिरगिट यज्ञनाथ के शरीर पर से होता हुआ जंगल की तरफ भाग गया। आकस्मिक भय से बूढ़े का सारा शरीर कांप उठा। बच्चों में जैसे खुशी की बाढ़-सी आ गई। यज्ञनाथ जैसे ही थोड़ा और आगे बढ़े, उनके कंधे पर से एकाएक अंगोछा गायब हो गया और उन्होंने देखा, वह अंगोछा तब तक उस अपरिचित बालक के सिर पर पगड़ी बन चुका था।

इस अनजान बच्चे के इस प्रकार के बर्ताव से यज्ञनाथ मन ही मन बहुत सन्तुष्ट हुए। किसी भी बालक से इस तरह की निस्संकोच आत्मीयता उन्हें बहुत दिनों से नहीं मिली थी। बहुत मिन्नतें करने और मचाने के बाद, और हर तरह से आश्वस्त करने के बाद यज्ञनाथ थोड़ा-बहुत उस लड़के को अपने कब्जे में कर पाए।

यज्ञनाथ ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या हे?"

उसने कहा, "निताई पाल।"

"तुम्हारा घर कहां है?"

"नहीं बताऊंगा।"

"बाप का नाम क्या है?"

"नहीं बताऊंगा।"

"क्यों नहीं बताओगे?"

"मैं घर छोड़कर भाग आया हूं।"

"क्यों?"

"मेरा बाप मुझे स्कूल भेजना चाहता है।"

ऐसे बच्चे को स्कूल भेजना बाप की फिजूलखर्ची तथा बुद्धिहीनता का परिचय था, यज्ञनाथ के मन में तुरन्त यह बात आई। यज्ञनाथ बोले, "मेरे घर रहोगे?"

बच्चे ने किसी भी तरह की आपत्ति किए बिना निस्संकोच वहां आश्रय ले लिया, जैसे यज्ञनाथ सड़क के किनारे के किसी पेड़ की छांह हो। सिर्फ इतना ही नहीं, वह लड़का खाने और पहनने के मामले में बेहिचक अपनी पसन्द बताने लगा, जैसे इन सब चीजों की कीमत उसने पहले ही चुका दी हो। इस बात पर यज्ञनाथ के साथ बच्चे का अच्छा-खासा मनमुटाव होता। अपने लड़के को हराना आसान है लेकिन दूसरे के लड़के के सामने यज्ञनाथ को हार माननी ही पड़ी।

(3)

यज्ञनाथ के घर में निताई पाल का इस तरह का अकल्पनीय आदर-भाव देखकर गांव के लोग आश्चर्य में पड़ गए। वे सोचने लगे कि बुड्ढा तो अब ज्यादा दिनों तक जीएगा नहीं और कहां न कहां के इस विदेशी लड़के को उसकी सारी जायदाद मिल जाएगी।

बच्चे से सभी को बड़ी ईर्ष्या हुई और सभी कृतसंकल्प हो उसका बिगाड़ने के लिए सोचने लगे। पर बुड्ढे ने छाती की पसलियों की तरह उसे ढक कर रखा था।

वह लड़का कभी-कभी चले जाने की धमकी देता। यज्ञनाथ उसे तरह-तरह का लालच देते। कहते, "भैया, मैं तुझे अपनी सारी जायदाद दे दूंगा।" बालक की उम्र कम थी पर वह बूढ़े के इस आश्वासन का मर्म समझता था।

गांव वाले अब इस बच्चे के बाप का पता लगाने लगे। वे बोले, "अहा। न जाने इसके मां-बाप पर क्या बीत रही होगी। बच्चा भी तो कुछ कम पापी नहीं।"

इस तरह से उस बच्चे को लेकर बुरी गालियां देने लगे। गालियों से ऐसी बू आती जिससे साफ पता चलता था कि उन गालियों में न्यायबुद्धि से अधिक स्वार्थ की जलन थी।

एक दिन राह चलते एक राही से बूढ़े यज्ञनाथ ने सुना कि दामोदर पाल नामक कोई व्यक्ति अपने पुत्र को ढूंढता फिर रहा है और इसी गांव की तरफ चला आ रहा है। इस समाचार से निताई बिल्कुल घबरा उठा। जमीन-जायदाद सबका लालच छोड़ भागने लगा।

निताई को यज्ञनाथ ने बार-बार समझाया। बोले, ''मैं तुम्हें ऐसी जगह छिपाकर रखूंगा कि ढूंढने पर भी किसी को नहीं मिलोगे। यहां तक कि गांव के आदमी भी नहीं ढूंढ सकेंगे।'' यह सुन बच्चे के मन में बड़ा कौतूहल हुआ बोला, वह जगह कहा है, मुझे दिखाइए न।''

यज्ञनाथ बोले, ''अभी दिखाने पर लोग-बाग जान जाएंगे। रात को दिखा दूंगा।''

नए रहस्य की खोज की खुशी में निताई खिल उठा। उसने मन में सोच लिया कि उसका बाप उसे खोजने के लिए आएगा, फिर उसे न पाकर जब वह वापस चला जाएगा तब वह बाजी लगाकर दूसरे बच्चों के साथ लुका-छिपी खेलेगा। कोई भी उसे नहीं खोज पाएगा। कितना मजा आएगा। बाप आकर सभी जगह खोज जाएगा, फिर भी उसे ढूंढ नहीं पाएगा। यही भी बड़े मजे की बात होगी।

दोपहर को निताई को घर में बन्द करके यज्ञनाथ कहीं बाहर चले गए। जब वह लौटे तो निताई ने उस जगह के बारे में पूछ-पूछ कर उन्हें तंग कर डाला।

सांझ ढलते ही निताई फिर बोला, ''चलिए''।

यज्ञनाथ बोले, ''अभी और रात होने दो।''

निताई बोला, ''रात तो हो गई है दादाजी। चलिए न।''

यज्ञनाथ बोला, ''मुहल्ले के लोग अभी सोए नहीं है।''

क्षण भर रुक कर निताई फिर बोला, ''अब तो सब सो गए होंगे, चलिए।''

रात बढ़ने लगी। नींद से ऊंघता हुआ निताई बड़े कष्ट से जागने की कोशिश कर रहा था। रात के करीब दो बजे यज्ञनाथ निताई का हाथ पकड़कर सोए हुए गांव की सड़क पर निकल पड़े। कहीं कोई आहट तक नहीं थी। रह-रहकर सिर्फ कुत्तों के भौंकने की आवाज आ रही थी, और उस आवाज से पास या दूर, जहां जितने भी कुत्ते थे, सभी एक स्वर में भौंक उठते थे। बीच-बीच में रात के पक्षी पैर की आहट सुनकर झटपट जंगल में उड़ जाते। निताई ने डर के मारे यज्ञनाथ का हाथ कसकर पकड़ लिया।

मैदान होकर काफी दूर तक चलने के बाद दोनों देवता-विहीन एक टूटे मन्दिर में जाकर पहुंचे। निताई थोड़ा खिन्न होकर बोला, ''यहां?''

निताई ने जैसा मन में सोचा था, यहां वैसा कुछ भी नहीं था। इसमें रहस्य कहां था? पिता का घर छोड़ने के बाद ऐसे टूटे मन्दिरों में उसे कभी-कभी रात गुजारनी पड़ी थी। यह जगह लुका छिपा खेलने के लिए बुरी नहीं थी, फिर भी यहां से किसी को ढूंढ निकालना कोई मुश्किल काम नहीं था।

यज्ञनाथ ने मन्दिर के अन्दर से एक पत्थर उठाया। बच्चे ने देखा कि पत्थर के नीचे कमरानुमा कुछ है, जहां एक दीप जल रहा है। यह देख उसे बड़ा ही विस्मय और कौतूहल हुआ। साथ-साथ उसे डर

भी लग रहा था। एक सीढ़ी लगाकर यज्ञनाथ उस कमरे में उतर गए। उनके पीछे-पीछे निताई भी डरता हुआ नीचे उतरा।

नीचे जाकर निताई ने देखा, चारों तरह पीतल के कलश भरे पड़े थे। उनके बीच में एक आसन बिछा हुआ था और उसके सामने सिन्दूर चन्दन, फूल की मालाएं आदि पूजा के उपकरण रखे थे। कौतूहलवश झांक कर बच्चे ने देखा कि बड़ों में केवल मुहर और रुपये भरे थे।

यज्ञनाथ बोले, ''निताई, मैंने तुम्हें कहा था कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति तुम्हें दूंगा। मेरे पास ज्यादा कुछ नहीं। सिर्फ यही कुछ घड़े मेरी पूंजी हैं। आज यह सारा कुछ मैं तुम्हारे हाथों में दे दूंगा।''

बच्चा उछल पड़ा, बोला, ''सारा कुछ मुझे दे देंगे?'' इसमें से आप एक भी रुपया नहीं लेंगे?''

''अगर मैं लूं तो मेरे हाथ में कोढ़ हो जाए। पर एक बात है, अगर कभी मेरा अपना पोता गोकुलचन्द्र या उसका लड़का या उसका पोता या उसका भी लड़का या उसके खानदान का कोई भी आए तो उसके या उसके परिवार के हाथों में तुम्हें ये सारे रुपये गिनकर लौटाने होंगे।''

बच्चे ने सोचा, 'बुड्ढा शायद पागल हो गया है।' उसने तुरन्त कहां, ''अच्छा।'' यज्ञनाथ बोले, ''तो फिर इस आसान पर आकर बैठ।''

''क्यों?''

''तुम्हारी पूजा होगी।''

''क्यों?''

''यही नियम है।''

निताई आसान पर बैठ गया। यज्ञनाथ ने उसके माथे पर चन्दन का टीका लगाया, सिन्दूर की बिन्दी लगाई, गले में माला डाली, और उसके सामने बैठकर बुदबुदाकर कुछ मन्त्र पढ़ने लगे।

देवता बनकर बैठा निताई मन्त्र सुनकर डर गया। उसने पुकारा, ''दादाजी।'' यज्ञनाथ कुछ बोले बिना फिर मन्त्र पढ़ने लगे।

अन्त में बड़े कष्ट से उन्होंने एक-एक घड़े को खींचकर बालक के सामने रखा और उन घड़ों को सौंपते हुए हर बार बच्चे से कहलवाया, 'युधिष्ठिर कुंडु के पुत्र गदाधर कुंडु, तस्य पुत्र गोकुलचन्द्र कुंडु को या उसके पुत्र अथवा पौत्र अथवा प्रपौत्र या उसके वंश के सच्चे उत्तराधिकारी को मैं ये सारे रुपये गिनकर लौटा दूंगा।''

इस तरह बार-बार एक ही मन्त्र पढ़ते बच्चा हतप्रभ हो गया। उसकी जीभ लटपटा गई। जब तक अनुष्ठान समाप्त हुआ, दीप के धुएं और दोनों की सांसों से वह छोटी सी गुफा धूमिल हो गई थी। बच्चे का कण्ठ सूख गया, हाथ पैर जलने लगे और उसे घुटन महसूस होने लगी।

दीया बुझते-बुझते बुझ गया। अंधेरे में ही बच्चे ने अनुभव किया कि यज्ञनाथ बांस की सीढ़ी से ऊपर की तरफ उठ रहे हैं।

उसने व्याकुल होकर पुकारा, "दादाजी, आज कहां जा रहे हैं?"

यज्ञनाथ बोले, "मैं जा रहा हूं। तू यहां रह। तुझे कोई नहीं खोज पाएगा। लेकिन याद रखना यज्ञनाथ का पोता, वृन्दावन का पुत्र गोकुलचन्द्र।"

इतना कहकर उन्होंने ऊपर सीढी हटा ली। निताई रुंधी आवाज में बड़ी तक़लीफ से बोला, ''दादाजी, मैं पिताजी के पास जाऊंगा।''

यज्ञनाथ ने पत्थर को उसी स्थान पर वापस रख कर गुफा का द्वारा ढक दिया, फिर रुंधे स्वर में पुकारा, ''पिताजी''।

उसके बाद कुछ गिरने की आवाज हुई। फिर बिल्कुल सन्नाटा छा गया।

यज्ञनाथ इस तरह से यज्ञ के हाथों में धन समर्पित कर उस पत्थर पर मिट्टी चढ़ाने लगे। फिर उसके ऊपर टूटे हुए मन्दिर के ईंट-चूने का ढेर लगाने लगे। फिर ऊपर उन्होंने घास समेत मिट्टी का टुकड़ा बैठाया। फिर भी जब उन्हें चैन नहीं मिली तो उस मिट्टी पर जंगली बेल लगा दी। रात दी। रात खत्म होने लगी थी, फिर भी वह उस जगह से हिल नहीं पाए। रह-रह कर जमीन में कान लगाकर सुनने लगे। उन्हें लग रहा था, मानों बहुत दूर से, पृथ्वी की अनन्त गहराई से, रोने की आवाज आ रही थी। लग रहा था, रात का यह आकाश उस एक आवाज से परिव्याप्त हो गया है, और सारी दुनिया के लोग उस आवाज से जाग कर बिस्तर पर उठ बैठे हैं और चौकन्ने होकर सुनने की कोशिश कर रहे हैं।

यज्ञनाथ बेचैन होकर उस जगह मिट्टी पर मिट्टी चढ़ाने लगे, जैसे इस तरह से वह दुनिया का मुंह बन्द करना चाह रहे हों। एकाएक उन्हें लगा कि उन्हें कोई पुकार रहा है, ''पिताजी।''

बूढ़े ने जमीन पर और चोट पहुंचाई और बोले, ''चुप कर सब जान जाएंगे।''

किसी ने फिर पुकारा, ''पिताजी।''

वृद्ध ने देखा, धूप काफी निकल आई है। वह डर कर मन्दिर छोड़कर मैदान में आ गए, पर वहां भी किसी ने पुकारा, ''पिताजी, मुझे पता चला है कि मेरा लड़का आप ही के यहां छिपा है। उसे मुझे लौटा दीजिए।''

बूढ़े ने आंख-मुंह विकृत कर वृन्दावन की तरफ झुककर आश्चर्य से पूछा, ''तेरा लड़का?''

वृन्दावन बोला, ''हां, गोकुल... अब उसका नाम है निताई पाल और मेरा दामोदर। आस-पास सभी जगह आपकी बड़ी ख्याति है, इसलिए शर्म से हमने अपना नाम ही बदल लिया, नहीं तो शायद हमारा नाम भी कोई जबान पर नहीं लाता।''

यज्ञनाथ ने जैसे अपनी दसों उंगलियों से आकाश में कुछ ढूंढ़ने की चेष्टा की, वह जैसे हवा को ही पकड़ना चाह रहे हो। इसी तरह की कोशिश करते-करते वह जमीन पर गिर पड़े।

जब उन्हें होश आया तो वह वृन्दावन को मन्दिर में खींच कर ले गए और बोले, ''रोने की कोई आवाज सुनाई दे रही है?''

वृन्दावन बोला, ''नहीं।''

''कान लगाकर सुनो। कोई पिताजी कहकर पुकार रहा है?''

वृन्दावन बोला, ''नहीं।''

लगा, बूढ़ा निश्चिंत हो गया।

उसके बाद से वह बूढ़ा सामने जिसे पाता, उसी से पूछता-फिरता, ''रोने की आवाज सुनाई दे रही है?''

पागल की बात सुनकर सभी हंस पड़ते।

अन्त में करीब चार साल बाद बूढ़े के मरने का दिन आया। जब आंखों के सामने से दुनिया की सारी रोशनी चली गई, सांसा बन्द होने लगी, तब विकार से वह एकाएक उठ बैठे। एक बार दोनों हाथों से चारों तरफ कुछ खोजने लगे फिर बोले, ''निताई, मेरी सीढ़ी किसने खींच ली है?''

उस हवा-विहीन, प्रकाश-विहीन महाखाई से बाहर निकलने की कोई सीढ़ी न पाकर वे फिर धम् से बिस्तर पर गिर पड़े। संसार के लुकाछिपी के खेल में, जहां ढूंढ़ने पर भी किसी को खोजा नहीं जा सकता, वह अन्तर्ध्यान हो गए।

अनाधिकार

एक सुबह सड़क के किनारे खड़े-खड़े एक लड़के ने दूसरे लड़के के साथ एक साहसिक बाजी लगाई। शर्त थी कि ठाकुरबाड़ी से माधवीलता के फूल कौन तोड़कर ला सकता है। एक लड़के ने कहा, ''मैं ला सकता हूं।'' दूसरे ने चुनौती दी, ''हर्गिज़ नहीं ला सकते।'' सुनने में तो आसान लगता है पर असल में यह काम इतना आसान नहीं था। क्यों नहीं था, इसका कुछ खुलासा करना जरूरी है।

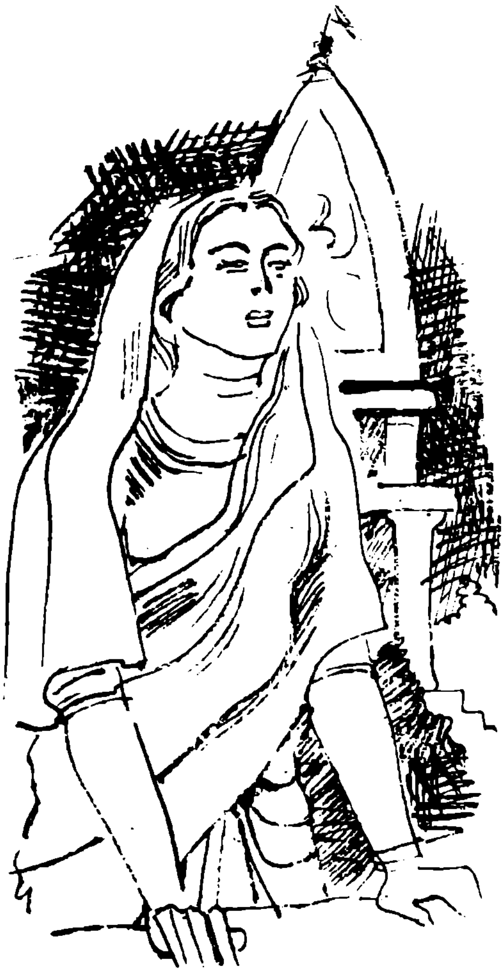

स्वर्गीय माधवचन्द्र तर्क वाचस्पति की विधवा पत्नी जयकाली देवी का इस राधानाथ जी के मन्दिर पर अधिकार था, छोटी-सी पाठशाला में अध्यापक जी को 'तर्क वाचस्पति' की जो उपाधि मिली थी, उसे वह अपनी पत्नी के सामने कभी भी प्रमाणित नहीं कर सके थे। किसी-किसी पंडित की राय में इस उपाधि की सार्थकता यह थी कि तर्क एवं भाषण पूर्णत: पत्नी के हिस्से पड़े थे, पर पति होने के नाते उसका लाभ माधवचन्द्र जी को मिला था।

अगर सच कहा जाए तो मानना पड़ेगा कि जयकाली ज्यादा बोलती नहीं थी, पर कभी-कभी सिर्फ एक-दो बातों से ही या चुप रहकर भी, बड़े-बड़ों की बोलती बन्द कर देती थी।

जयकाली लम्बी, मजबूत, लम्बी नाक वाली, तेज बुद्धि की औरत थी। पति के जीवन काल में ही उनके खानदान द्वारा देवताओं को समर्पित जायदाद बर्बाद होने

जा रही थी। पर जयकाली ने सारा बकाया वसूल किया, निजी जमीन पर सीमाकर बांधा और अर्से से जब्त जमीन-जायदाद का उद्धार किया। उनका जो भी कुछ था, उसमें से रत्ती भर से भी उन्हें कोई वंचित नहीं कर सका।

इस औरत के स्वभाव में इतना पौरुष था कि सही माने में उसका अपना कोई साथी नहीं था। औरतें उससे डरती थीं। दूसरों की चर्चा, घटिया बातें और बात-बात में रोने पर चिढ़ती थी। पुरुष भी उससे डरते थे, क्योंकि गांव के भद्र लोग जब चंडी-मंडप में बैठे-बैठे गप-शप में समय बिताते तो उनके इस असीम आलस्य को जायकाली ऐसी मूक लेकिन घृणित दृष्टि से धिक्कारती कि उसकी नजर उन पुरुषों की स्थूल काया भेदकर चुभ जाती थी।

इस प्रौढ़ा विधवा में प्रबल रूप से घृणा करने और उस घृणा को प्रबल रूप से व्यक्त करने की असाधारण क्षमता धी। उसकी राय में जो अपराधी होते, उन्हें वह अपनी बातों या अपनी भाव-भंगिमा से ही झुलता देती।

गांव की सभी प्रकार की गतिविधियों और सुख-दु:ख में वह अवश्य हाथ बंटाती। हर जगह, वह सहज रूप से अपने लिए सम्मानपूर्ण स्थान बना लेती थी। जहां भी वह उपस्थित होती वहां वही प्रमुख है, इसमें न उसके और न वहां मौजूद और किसी के मन में किसी प्रकार की शंका होती थी। रोगियों की सेवा में वह सिद्धहस्त थी, पर रोगी उससे उतना ही डरते, जितना साक्षात यम से। पथ्य देने या रोगी की सेवा में किसी प्रकार के व्यतिक्रम से हवा इतनी गर्म हो उठती कि रोग के ताप से अधिक उसकी बोली का ताप रोगी को जला डालता था।

लम्बे-चौड़े कद और स्वभाव से तेज़-तर्रार, यह विधवा विधाता के कठोर विधान के समान गांव के सिर पर लटकती रहती। कोई उसे प्यार या उसकी अवहेलना करने की हिम्मत नहीं रखता था। गांव के हर व्यक्ति के साथ उसकी अच्छी जान-पहचान थी, लेकिन उसके समान अकेला भी कोई दूसरा न था।

विधवा नि:सन्तान थी। दो अनाथ भतीजे उसके घर पल रहे थे। कहना कठिन था कि वे दोनों पुरुष अभिभावक के अभाव में सही अनुशासन में नहीं थे या बुआ के प्यार में बर्बाद हो रहे थे। बड़े भतीजे की उम्र उठारह साल थी। बीच-बीच में लोग उसकी शादी के रिश्ते के लिए भी आते। अपने तई भी वह लड़का शादी की तरफ से उदासीन नहीं था। पर उसकी बुआ के मन में उसकी इस सुखद इच्छा के प्रति थोड़ी भी सहानुभूति नहीं थी।

दूसरी औरतों की तरह वह किसी भी किशोर नव-दम्पत्ति के प्रेम या उनके हाव-भाव को अच्छी नजर से नहीं देखती थी, उसका भतीजा शादी रचाकर अन्य भद्र पुरुषों की भांति आलसी बनकर दिन भर पत्नी के प्यार में डूबा रहे और घर में बैठकर फैलता रहे, इसकी सम्भावना ही उसकी नजर में घृणा की बात थी। वह कठोर भाव से बोलती थी, ''पुलिन पहले कमाना सीखें, उसके बाद बहू घर

आएगी"। बुआ के मुंह से निकली ये बातें पड़ोसियों का दिल चकनाचूर कर देती थीं।

जयकाली को सबसे ज्यादा यत्न की जगह उसका मन्दिर था। भगवान के सोने, पहनावे, स्नान और आहार में तिल मात्र भी त्रुटि नहीं हो पाती थी। दोनों ब्राह्मण पुजारी देवता से अधिक इस मानवी से डरते थे। पहले कभी ऐसे भी दिन आए थे जब देवता के लिए निश्चित भोग उन्हें पूरा-पूरा नहीं मिलता था, क्योंकि पुजारी की पूजा की असली प्रतिमा किसी और गोपनीय जगह में छिपी हुई थी। उसका नाम था निस्तारिणी। घी, दूध, पनीर, मैदा का भोग रोज चुपचाप स्वर्ग और नरक के बीच बांट दिया जाता था। पर आजकल जयकाली के शासन में पूजा के लिए आए हुए भोग का सोलह आना भगवान को चढ़ाना पड़ता था। उपदेवताओं को अपनी जीविका के लिए अब कोई दूसरा उपाय करना पड़ा था।

विधवा की देखभाल के कारण मन्दिर का आंगन बराबर साफ-सुथरा और चमकता रहता था...कहीं एक तिनका तक नजर नहीं आता था। एक तरफ मचान पर माधवी की बेल फैली हुई थी। उसकी एक भी सूखी पत्ती यदि जमीन पर गिर जाती, जयकाली तुरन्त उसे उठाकर बाहर फेंक आती। मन्दिर की सफाई, उसकी पवित्रता, उसके रख-रखाव में किसी प्रकार की बाधा विधवा सह नहीं पाती थी। पहले मुहल्ले के लड़के लुकाछिपी खेलते-खेलते मन्दिर के आंगन के किसी कोने में आकर छिप जाते थे, तो कभी आस-पास की बकरियों के बच्चे माधवी की बेल के पत्ते चबा जाते, पर अब यह होना कठिन था। त्यौहार के अवसरों के अलावा बच्चों का मन्दिर के आंगन में आना मना था। अब भूख का मारा बकरे का बच्चा लाठी की चोट खाकर चिल्लाता हुआ अपनी मां के पास लौट आता था।

सगा रिश्तेदार होने पर भी दुराचारी व्यक्ति को देवालय के प्रागण में प्रवेश निषिद्ध था। जयकाली का एक बहनोई, जो मुसलमान बावर्ची के हाथों का पकाया मुर्गी का मांस खाना बहुत पसन्द करता था, एक बार रिश्तेदारों से मिलने गांव आया तो मन्दिर में भी दर्शन के लिए आया, पर जयकाली ने उस पर आपत्ति उठाई, जिसके फलस्वरूप अपनी सगी बहन से उसका सम्बंध टूटते-टूटते बचा। मन्दिर के प्रति विधवा के मन में इतनी श्रद्धा थी कि आम लोग इसे पागलपन ही समझते।

वैसे तो जयकाली हर जगह कठोर और आजाद किस्म की थी, पर इस मन्दिर को वह पूर्णत: समर्पित थी। मन्दिर के भगवान की प्रतिमा के लिए वह जननी, पत्नी और दासी थी; अपने देवता के लिए सजग, सुकोमल, सुन्दर और नम्र। पत्थर का बना यह मन्दिर और उसकी प्रतिमा ही उसके ध्यान का एकमात्र केन्द्र थी। जैसे वह प्रतिमा ही उसका पति, उसका पुत्र और उसका संसार, सब कुछ थी।

इसी से स्पष्ट है कि जिस लड़के ने मन्दिर के आंगन में माधवीलता के फूल तोड़कर लाने की प्रतिज्ञा की थी; उसमें कितना साहस था। वह लड़का जयकाली का छोटा भतीजा नलिन था। वह अपनी बुआ के स्वभाव से भली-भांति परिचित था, फिर भी वह उसे कठोर शासन के वश में नहीं आया था। जोखिम-भरा कोई काम हो तो मनुष्य उसकी ओर तीव्र रूप से आकृष्ट होता है, और अनुशासन कितना भी कड़ा क्यों न हो, उसे तोड़ने के लिए मन भी उतना ही चंचल हो उठता है। सुनने में आया है कि

बचपन में उसकी बुआ का स्वभाव भी ऐसा ही था।

उस समय जयकाली मातृस्नेह से विभोर, भक्ति में रमी, देवता को अपलक देखती हुई बरामदे में बैठी-बैठी एकाग्र मन से माला गूंथ रही थी।

नन्हा नलिन पीछे से आहिस्ता-आहिस्ता आकर माधवी की बेल के नीचे खड़ा हो गया। उसने देखा, नीचे की बेल से पूजा के लिए फूल तोड़ लिए गए हैं। वह धीरे-धीरे मचान पर चढ़ा। ऊंची बेल पर दो-चार कलियां लगी थीं। जैसे ही वह हाथ बढ़ाकर फूल तोड़ने लगा, पुराना मचान उसका भार न सह सका। माधवी की बेल-साहित मचान और नलिन एक साथ धमाके के साथ जमीन पर आ गिरे।

जयकाली दौड़ी हुई आई और अपने भतीजे की करामात देखी। हाथों के बल जोर से पकड़ कर उसे उठाया। चोट उसे बहुत आई थी, पर उसे चोट को दंड तो कहा नहीं जाएगा, क्योंकि वह चोट तो अनजाने में लगी थी। इसलिए जमीन पर गिरे हुए बच्चे के दर्द-भरे शरीर पर जयकाली एक पर एक वार किए जा रही थी। उस बच्चे ने एक बूंद भी आंसू नहीं बहाया। चुपचाप मार सहता रहा। उसकी बुआ ने उसे घसीट कर एक कमरे में बन्द कर दिया। उसे शाम का खाना भी नहीं दिया गया।

खाना बन्द करने पर नौकरानी मोक्षदा ने कातर भाव से आंखों में आंसू लिए जयकाली से बहुत मिन्नतें की पर जयकाली का दिल जरा भी नहीं पसीजा। मालकिन से छिपाकर कोई बच्चे को खाना दे दे, घर में इतनी हिम्मत किसी में नहीं थी।

विधवा ने मचान को फिर से बनवाने के लिए मजदूरों को बुला भेजा और फिर माला लेकर दालान में जा बैठी। थोड़ी देर में मोक्षदा सहमी हुई आई और बोली, ''दादी मां, काका बाबू भूख से रो रहा है। उसे थोड़ा दूध दे दूं।''

जयकाली अविचलित भाव से बोली, ''नहीं''।

मोक्षदा लौट गई। उधर कमरे से नलिन के रोने की करुण आवाज धीरे-धीरे क्रोधभरी चिल्लाहट में बदलने लगी। काफी देर बाद वह कातर हो उठा और उसकी बुझी-बुझी सी आवाज जाप में मगन बुआ के कानों में गूंजती रही।

नलिन की रुलाई जब बन्द होने को आई अब किसी एक और प्राणी की भयभीत, कातर आवाज पास ही गूंज रही थी, और साथ ही दौड़ते आदमियों की आहट और उनका चीखना-चिल्लाना भी सुनाई देने लगा। कुल मिलाकर मन्दिर के सामने एक कोलाहल-सा मच गया।

अचानक मन्दिर के आंगन में पैरों की आहट आई। जयकाली ने पीछे मुडकर देखा, माधवी की बेल पूरी की पूरी हिल रही थी।

जयकाली ने गुस्से-भरी आवाज में पुकारा, ''नलिन।''

किसी ने जवाब नहीं दिया। वह समझ गई कि बदमाश नलिन किसी तरह कैद से भाग निकला है और फिर उसे चिढ़ाने आ गया है।

कठोर भाव से ओंठ से ओंठ दबाकर विधवा आंगन से उतरी। माधवी की झाड़ के पास आकर जोर से पुकारा, ''नलिन।''

कोई जवाब नहीं। उसने बेल हटाई तो देखा, एक अत्यन्त ही गन्दा सूअर का बच्चा डर कर प्राण बचाने के लिए घनी झाड़ी में आकर छिप गया था।

जो लता-कुंज इस ईंट की दीवार पर वृन्दावन और विपिन के संक्षिप्त प्रतिरूप-सा था जिसके खिले हुए फूलों की सुगन्ध गोपियों की सुगन्धित सांस की याद दिलाती थी तथा कालिन्दी तीर के विहार

के सौन्दर्य का स्वप्न मन में जगाती थी, और विधवा को प्राणों से भी प्रिय थी, उस सुपवित्र नन्दनवन में अचानक ही वह वीभत्स घटना घट गई।

पुजारी ब्राह्मण लाठी लिए दौड़ा आया।

जयकाली ने तुरन्त आगे बढ़कर उसे रोका एवं दौड़कर जाकर मन्दिर का दरवाजा बन्द कर दिया।

थोड़ी ही देर में शराब के नशे में चूर डोम लोग मन्दिर के दरवाजे पर आकर अपने बलिदान के पशु की वापसी के लिए चिल्लाने लगे। बन्द दरवाजे की आड़ में खड़ी जयकाली बोली, ''जाओ भागो। लौट जाओ। मेरा मन्दिर अपवित्र मत करो।''

सभी डोम वापस चले गए। जयकाली ने अपने राधानाथ जी के मन्दिर में उस गन्दे जीव को आश्रय दिया, जिस पर उसे स्वयं भी विश्वास नहीं हो रहा था।

इस छोटी-सी घटना से सारे विश्व के सभी जीवों के महादेवता परम प्रसन्न हुए होंगे, पर छोटे-से गांव का 'समाज' नामधारी अत्यन्त छोटा-सा देवता अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा।

स्वर्ण मृग

आद्यानाथ चक्रवर्ती और वैद्यनाथ चक्रवर्ती दो चचेरे भाई थे। दोनों में वैद्यनाथ की हालत कुछ खराब थी। वैद्यनाथ के पिता महेशचन्द्र में व्यावहारिक बुद्धि बिल्कुल नहीं थी। वह पूरी तरह अपने भाई शिवनाथ पर निर्भर थे। शिवनाथ ने भाई से चिकनी-चुपड़ी बातें करके उनकी सारी जायदाद खुद हड़प ली। महेशचन्द्र के पास अब सिर्फ कम्पनी के कुछ कागज रह गए थे। जीवन के सागर में ये ही कुछ कागजात उसके एकमात्र अवलम्ब रह गए थे।

शिवनाथ ने बड़ी खोजबीन के बाद किसी अमीर की एकमात्र लड़की के साथ अपने लड़के आद्यानाथ की शादी करवाकर जायदाद बनाने की एक और जुगत निकाल ली। महेशचन्द्र ने सात कन्याओं के बोध से लदे किसी गरीब ब्राह्मण पर कृपा कर अपने एकमात्र पुत्र का विवाह उनकी बड़ी लड़की के साथ बिना एक पैसा लिए कर दिया था। वह उस गरीब ब्राह्मण ने भी इस तरह का उनसे कोई अनुरोध नहीं किया था। पर फिर भी बाकी लड़कियों की शादी में उन्होंने अपनी शक्ति से बाहर आर्थिक सहायता दी थी।

पिता की मृत्यु के बाद वैद्यनाथ अपनी कम्पनी के उन कागजात को लेकर ही पूरी तरह से निश्चित और सन्तुष्ट थे। काम-काज की बात वह सोचते भी नहीं थे। पर एक काम उनका जरूर था... पेड़ की टहनियां काट कर बड़े यत्न से उनसे दड़ियां बनाना। आसपास के तमाम बच्चे और जवान, सभी उनके पास उनकी छड़ियों का उम्मीदवार बनकर पहुंचते थे। वह भी उन्हें छड़ी देते थे। इसके अलावा उदार मन से मछली पकड़ने की बंसी और पतंग और लटाइयां आदि बनाने में भी उनका काफी समय बीतता था। जिस काम में बहुत यत्न से बहुत समय तक काटने-छीलने की जरूरत पड़े, पर जो दुनिया की आंखों में बेकार हो, वैसा काम हाथ में आने पर वैद्यनाथ चक्रवर्ती का उत्साह असीम हो जाता।

मुहल्ले में चण्डीमंडप में जब बड़े-बुजुर्गों के बीच परचर्चा और परनिन्दा का कुहासा छा गया था, तब उस सारे समय वैद्यनाथ कम काटने का चाकू और पेड़ की एक टहनी लेकर सुबह से दोपहर तक, और फिर दोपहर के खाने तक, और विश्राम के बाद से शाम तक, अपने बरामदे में अक्सर अकेले बैठे दिखाई पड़ते थे।

ईश्वर की दया के वैद्यनाथ के घर एक लड़की और दो लड़के पैदा हुए।

गृहिणी मोक्षदासुन्दरी का असन्तोष हर रोज बढ़ता जा रहा था। उसको लगता, आद्यानाथ के घर में जिस तरह का ठाठ-बाट है, वैसा वैद्यनाथ के घर में क्यों नहीं है? उस घर की विन्ध्यवासिनी के पास

जिस तरह के जेवर थे, बनारसी साड़ियां थीं, बातचीत के तौर-तरीकों और चाल-ढाल में जो अहंकार था, वह सब मोक्षदा के पास नहीं था, इससे बढ़कर बुरी बात और क्या हो सकती थी? और फिर जब परिवार एक ही था। भाई की जायदाद ठगकर ही तो उन लोगों ने इतनी उन्नति की थी। मोक्षदा जितना ही सुनती, उतना ही उसका अपने ससुर और उससे भी ज्यादा ससुर के एकमात्र पुत्र के प्रति अश्रद्धा और अवहेलना बढ़ती जाती। अपने घर में उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उसे हर चीज में कमी दिखती। हर बात पर उसे अपमान का बोध होता। घर में सोने के लिए जो पलंग था, वह मुर्दा ले जाने के लायक भी नहीं था। घर ऐसा था कि, जिसके सातों कुल में कोई नहीं हो, वैसा अनाथ चमगादड़ का बच्चा भी रहना पसन्द नहीं करे, और घर का सामान देखकर तो ब्रह्मचारी परमहंस के आंखों में भी आंसू आ गए। इस तरह की बातों का प्रतिवाद करना कायर पुरुष जाति के लिए बड़ा असम्भव है। इसलिए बैद्यनाथ बाहर के बरामदे में बैठकर बहुत मन लगाकर दड़ी बनाने में जुटे रहते।

लेकिन इस तरह चुप रहने से विपत्ति से हमेशा के लिए तो बचा नहीं जा सकता। किसी-किसी दिन मोक्षदा पति के कलाकार्य में बाधा पहुंचाकर उन्हें अन्दर बुला लेती और बड़ी गम्भीर होकर दूसरी तरफ देखकर बोलती, "ग्वाले को दूध लाने के लिए मना कर दो।" वैद्यनाथ थोड़ी देर चुप रहने के बाद नम्र भाव से बोलते, "दूध बन्द करने से कैसे चलेगा? बच्चे कया पीएंगे?" गृहिणी बोलतीं, "आमानि (चावल का मांड)।"

किसी-किसी दिन वैद्यनाथ की पत्नी वैद्यनाथ को बुलाकर बोलती, "मैं कुछ नहीं जानती, तुम्हें जो करना है, करो।"

वैद्यनाथ मलिन भाव से बोलते, "क्या करना होगा?"

पत्नी कहती, "इस महीने का सामान बाजार से लाकर दो।" यह कहकर वह जो सूची देती, उससे कोई राजसूय यज्ञ हो सकता था।

वैद्यनाथ यदि हिम्मत जुटाकर पूछते, इतनी चीजों की क्या जरूरत है?'' तो उत्तर मिलता, ''बच्चे भूख से मर जाएंगे और मैं भी मर जाऊंगी। फिर तुम अकेले खूब कम में गृहस्थी चला लेना।''

इस तरह धीरे-धीरे वैद्यनाथ समझ गए थे कि छड़ी बनाना उन्हें बन्द करना पड़ेगा। और किसी रोजगार का प्रबन्ध करना पड़ेगा। नौकरी या व्यापार करना वैद्यनाथ के लिए मुश्किल था, इसलिए कुबेर के भण्डार में प्रवेश का कोई सरल-सा रास्ता ढूंढना पड़ेगा।

एक दिन रात को बिस्तर में सोकर उन्होंने कातर भाव से प्रार्थना की, ''हे मां जगदम्बे, स्वप्न में यदि किसी भयंकर रोग की पेटेंट दवा बतला दो तो कागज में उसका विज्ञापन निकलवाने का भार मेरा रहेगा।''

उस रात वैद्यनाथ ने सपना देखा कि उनकी पत्नी ने उनके ऊपर नाराज होकर 'विधवा विवाह करूंगी' की जिद कर दी है। वैद्यनाथ उस प्रस्ताव पर यह कहकर आपत्ति उठा रहे हैं कि पैसों के अभाव में गहने कैसे बनेंगे? पर उनकी पत्नी उनकी बात का खंडन कर बोल रही है कि विधवा को गहनों की जरूरत नहीं होती। इसका भी एक उचित जवाब था, पर वह वैद्यनाथ को याद ही नहीं आ रहा था। ऐसे समय उनकी नींद खुल गई और उन्होंने देखा कि सुबह हो गई है। उनकी पत्नी का विधवा विवाह क्यों नहीं हो सकता था, उसका सही जवाब अब तुरन्त उनके दिमाग में आ गया और इससे उनके मन में थोड़ा दुख भी हुआ।

× × ×

दूसरे दिन सुबह नित्य-कर्म से निपट कर वैद्यनाथ अकेले बैठे-बैठे पतंग बना रहे थे। ऐसे समय में अचानक एक साधु 'जय हो जय हो' कहते हुए उनके दरवाजे पर आ खड़े हुए। वैद्यनाथ के शरीर में उसी क्षण बिजली-सी दौड़ गई। उन्हें लगा, ऐश्वर्य की धवल मूर्ति ही प्रत्यक्ष उनकी आंखों के सामने है। उन्होंने साधु को बड़े आदर से बैठाया, खाना खिलाया। बड़ी मिन्नतें करने के बाद वह जान पाए कि साधु सोना बना सकते हैं और चाहने पर यह विद्या वैद्यनाथ को भी सिखा सकते हैं।

यह सुनकर वैद्यनाथ की पत्नी भी नाच उठी। पीलिया के रोगी को जैसे हर चीज पीली दिखाई देती है, वैसे ही वैद्यनाथ भी हर जगह सोना देखने लगे। उन्होंने कल्पना के कारीगर से सोने का पलंग, घर का सारा सामान, यहां तक कि घर की दीवारें तक सोने से बनवा कर मन ही मन मोक्षदा को अर्पित कर दिया।

मछली पकड़ने की बंसी, छड़ी और लटाई के लालची बच्चे अब वैद्यनाथ का बन्द दरवाजा बार-बार व्यर्थ खटखटाकर लौट जाते। घर के बच्चों को समय पर खाना नहीं मिलता। गिरकर उनका सिर फूट जाता तो उनका रोना आकाश चीर देता था, पर अब पति-पत्नी में से किसी को इसकी कोई परवाह नहीं रहती। वे दोनों चुपचाप आग के पास बैठे-बैठे कढ़ाई में आंखें गड़ाए रहते। उनकी आंखों की पलकें भी नहीं झपकती। मुंह में उनके बोली नहीं थी। एकटक देखते-देखते आग की लौ की परछाई ने उनकी प्यासी आंखों को भी पारसमणि बना दिया था। उनकी आंखें सूर्यास्त की तरह लाल हो चुकी थी!

कम्पनी के दो कागजातों की इस स्वर्ण अग्नि में आहुति देने के बाद एक दिन सन्यासी ने कहा,

उस रात किसी को नींद नहीं आई। पति-पत्नी मिलकर सोने की शिला बनाने लगे। इस मामले में रह-रहकर दोनों के बीच मतभेद हो जाता, बहस भी हो जाती, पर खुशी के आवेश में उन झगड़ों का निपटारा भी झट हो जाता। एक दूसरे के लिए अपनी जिद कुछ कम करने पर दोनों राजी हो जाते। उस रात दाम्पत्य प्रेम खूब जमा था।

दूसरे दिन सन्यासी कहीं दिखाई नहीं पड़े। चारों ओर जो सोने का रंग दिखाई देता था, अब न जाने कहां खो गया। अब तो सूर्य की किरणें भी अंधेरी दिखाई दे रही थीं। इसके बाद से सोने के पलंग, घर का सामन और घर की दीवारों से और भी गरीबी और जीर्णता टपकने लगी।

उसके बाद से घर के मामले में जब भी वैद्यनाथ अपनी कोई राय देना चाहते, उनकी पत्नी तीखी पर मीठी आवाज में कहती, ''बुद्धि का परिचय तुमने बहुत दिया है। अब थोड़े दिनों तक चुप बैठो।'' सुनकर वैद्यनाथ बिल्कुल बुझ जाते।

उधर मोक्षदा ऐसा ऊंचा भाव दिखाती जैसे स्वर्ण मरीचिका के लिए एक पल के लिए भी उतावली न हुई हो।

अपराधी वैद्यनाथ पत्नी को थोड़ा सन्तुष्ट करने के लिए तरह-तरह के उपाय सोचने लगे। एक दिन वह चौकोर कागज में कोई उपहार लपेटे पत्नी के पास आए ओर हंसकर बोले, ''कहो तो क्या लाया हूं?'' पत्नी कौतूहल छिपा कर उदासीन भाव से बोली, ''कैसे बताऊं? मैं तो कोई अलादीन की जिन नहीं हूं।''

वैद्यनाथ ने अब और समय बर्बाद न कर पहले पैकेट की रस्सी धीरे से खोली, फिर फूंक मार उससे धूल साफ की, और पैकेट खोलकर आर्ट स्टूडियो के महाविद्या के दस रंगीन फोटो निकाल कर पत्नी के सामने रखे।

पर इसे देखकर पत्नी के मन में तुरन्त विन्ध्यवासिनी के सोने के कमरे में रखे विलायती तैलचित्र की याद आई। वह बड़ी अवहेलना के साथ बोली, ''हाय मैं मर जाऊं। इन फोटो को अपने बैठक में टांगकर बैठे-बैठे तुम देखा करते रहना। मुझे इसकी जरूरत नहीं।'' उदास वैद्यनाथ समझ गए कि

बहुत-से और गुणों तरह ईश्वर ने उन्हें औरत को खुश करने के गुण से भी वंचित रखा था।

× × ×

इधर देश में जितने भी ज्योतिषी थे, मोक्षदा ने सभी को अपना हाथ दिखाया, जन्मकुंडली दिखाई। सभी ने कहा, वह सुहागिन रहकर ही मरेगी। लेकिन मोक्षदा उस आनन्दमय परिणाम के लिए बिल्कुल बेचैन नहीं थी। इसके लिए उसके मन में कौतूहल भी नहीं था।

एक ज्योतिषी ने कहा, उसक सन्तान रेखा अच्छी है, पुत्र-कन्याओं से उसका घर जल्द भर जाने की सम्भावना है। यह सुनकर भी मोक्षदा ने कोई खुशी जाहिर नहीं की।

अन्त में एक ज्योतिषी ने कहा, ''साल भर के अन्दर यदि वैद्यनाथ को छिपा हुआ धन नहीं मिला तो मैं अपनी ज्योतिष की सारी किताबों तथा पंचांग आदि को जला डालूंगा।'' ज्योतिष के ऐसे दावे को सुनकर मोक्षदा के मन में अब कोई अविश्वास नहीं रहा।

ढेर सारी दक्षिणा लेकर ज्योतिषी ने विदाई ली। पर वैद्यनाथ का जीवन दूभर हो उठा। पैसे कमाने के कुछ साधारण प्रचलित उपाय हैं, खेती-बाड़ी, नौकरी, व्यापार, चोरी, धोखाधड़ी आदि। लेकिन गुप्त धन प्राप्त करना इनमें से नहीं है। इसके लिए मोक्षदा वैद्यनाथ का उत्साह जितना बढ़ाती, उनका तिरस्कार करती, वैद्यनाथ को उतना ही कोई रास्ता और नहीं सूझता था। वे कहां की जमीन खोदें, किस तालाब में अपनी पनडुब्बी उतारें, घर की कौन सी दीवार तोड़ने पर उन्हें कुछ मिलने की संभावना है वह कुछ समझ नहीं पा रहे थे।

मोक्षदा बहुत नाराज होकर पति से बोलती, ''तुम्हारे दिमाग में गोबर भरा है, यह मुझे पहले मालूम नहीं था। थोड़ा हिल डुल कर देखो। मुंह फाड़े बैठे रहने से आकाश से पैसे बरसेंगे?''

बात सच थी। वैद्यनाथ कुछ करना भी चाहते थे। पर वह हिले भी तो कैसे, कहां जाएं, क्या करें, कौन बताता? अन्त में दालान में बैठकर वैद्यनाथ फिर छड़ियां बनाने लगे।

आश्विन का महीना आया। दुर्गा पूजा होने वाली थी। चतुर्थी के दिन से ही घाट पर नावें आने लगीं। प्रवास से लोग घर लौट रहे थे। उनकी टोकरियों में जिमिकन्द, काशीफल, नारियल आदि रहते। टिन के बक्से में बच्चों के लिए जूते, छाते, कपड़े, प्रयेसी पत्नी के लिए इत्र, साबुन, कहानी की कोई नई किताब और सुगन्धित नारियल का तेल भी साथ में आता।

आकाश मेघयुक्त था। शरद ऋतु की सूर्य की किरणें भी उल्लास के उत्सव में हंस रही थीं। पके धन की मंजरियां लहलहा रही थीं। बरसात के जल से धुले हुए पेड़-पौधे शीत ऋतु की ठण्डी हवा में सिरसिरा रहे थे-और तसर का बना चाइना कोट पहने, कन्धे पर चादर लटकाकर, छाता लगाए लोग मैदान के रास्ते से होकर घर लौट रहे थे।

वैद्यनाथ बैठे-बैठे लम्बी सांसें लेते लोगों का आना-जाना देखते रहते। अपने आनन्द-विहीन घर

के साथ बंगाल के सैंकड़ों घरों के मिलनोत्सव की तुलना कर मन ही मन कहते, "भगवान, तुमने मुझे ही क्यों इतना अकर्मण्य बनाया?"

वैद्यनाथ के बच्चों ने सुबह से ही प्रतिमा-निर्माण देखने के लिए आद्यानाथ के घर के प्रांगण में भीड़ लगा रखी थी। खाने के समय नौकरानी जबर्दस्ती उन्हें पकड़ लाई। वैद्यनाथ उस समय बैठे-बैठे विश्वव्यापी उत्सव के बीच अपने जीवन की निष्फलता पर सोच रहे थे। नौकरानी के हाथों से दोनों लड़कों को छुड़ाकर उन्हें अपने पास प्यार से बैठाकर बड़े लड़के से पूछा, "हां रे अबू, बता तो इस बार दूशहरे में तेरा क्या लेने का मन है?"

अविनाश ने तुरन्त जवाब दिया, "एक नाव पिताजी।"

छोटे लड़के ने सोचा, 'बड़े भाई से किसी भी चीज में छोटा नहीं रहना चाहिए' इसलिए उसने भी कहा, "पिताजी, मुझे भी एक नाव दीजिएगा।"

दोनों बाप के ही तरह के बेटे थे। फालतू का शिल्प कार्य मिल जाए तो और कुछ नहीं चाहिए। बाप ने कहा, "अच्छी बात है।"

इधर यथा समय दशहरे की छुट्टी में मोक्षदा के एक चाचा घर लौटे। वह पेशे से वकील थे। मोक्षदा कुछ दिनों तक उनके यहां खूब आई-गई।

फिर एक दिन पति से बोली, "सुनो, तुम्हें एक बार काशी जाना पड़ेगा।"

वैद्यनाथ को एकाएक लगा, शायद उनको मृत्यु का समय आ गया है। ज्योतिषी ने उनकी जन्मकुण्डली देखकर बात बताई होगी, सहधर्मिणी को पता लगा होगा, इसलिए पति को स्वर्ग पाने का रास्ता बता रही थी।

बाद में पता चला कि ऐसा सुना गया था कि काशी में एक ऐसा घर है, जहां गुप्त धन छिपा है। वैद्यनाथ को वह मकान खरीदकर वहां से गुप्त धन निकालकर बाहर लाना था।

वैद्यनाथ बोले, "मैं काशी नहीं जा सकता।" वैद्यनाथ घर छोड़कर कभी बाहर गए नहीं थे। गृहस्थ को कैसे घर से बाहर किया जाता है। इस पर पुराने शास्त्रकारों ने लिखा है कि अशिक्षित होने पर भी औरतें इस विषय में बहुत पटु होती हैं। मोक्षदा भी सिर्फ अपनी बातों से कमरे में मिर्च का धुंआ छोड़ती थी, लेकिन इसके बावजूद वैद्यनाथ केवल आंखों से पानी बहाते, काशी जाने का नाम नहीं लेते।

इसी तरह से दो-तीन दिन बीत गए। वैद्यनाथ ने कुछ लकड़ी काट कर उससे खिलौने की नावें बनाई। नाव में मस्तूल भी लगाया, कपड़ा काट कर उसका पाल बनाया, लाल कपड़े का निशान लगाया। नाव में पतवार लगा दिए और एक गुड्डे को मांझी और दूसरे को सवार बनाया। बड़े यत्न से

उन्होंने ऐसी प्यारी नावें बनाई थीं। ऐसी नावें देख कर जिनका मन अधीर और चंचल न हो, ऐसे बच्चे कहीं नहीं मिलेंगे।

सप्तमी की पूजा की रात को जब वैद्यनाथ ने बच्चों के हाथ में नाव दी, वे खुशी से झूम उठे। वे तो नाव के ढांचे से ही खुश होते। फिर इनमें तो पतवार भी थी। मस्तूल, मांझी, पाल, सवार सब कुछ था। वे आश्चर्यचकित रह गए।

बच्चों के आनन्द के शोर से आकृष्ट होकर मोक्षदा ने आकर दरिद्र पति के दशहरे का उपहार देखा, और रो कर अपना सिर पीट लिया। दोनों खिलौनों को बच्चों से छीन कर खिड़की से बाहर फेंक दिया और कहने लगी, "सोने का हार नहीं, साटिन की कमीज नहीं, जरी की टोपी नहीं, अभागा बाप दो खिलौने देकर अपने बच्चों को धोखा दे रहा है। और उसमें दो पैसे भी खर्च नहीं हुए, अपने ही हाथों के बनाए खिलौने दे रहा है।"

छोटा लड़का जब जोर-जोर से रोने लगा, तो मोक्षदा ने 'बेवकूफ, कह कर उसके गाल पर कसकर एक तमाचा जड़ दिया।

बड़ा लड़का पिता की तरफ देखकर अपना दुख भूल गया। उसने प्रसन्न भाव से कहा, "पिताजी, मैं सुबह उठकर नावों को उठा ले आऊंगा।"

उसके दूसरे ही दिन वैद्यनाथ काशी जाने के लिए राजी हो गए। पर जाने के लिए रुपये कहां थे? उनकी पत्नी अपने गहने बेचकर रुपये ले आई। वैद्यनाथ की दादी के जमान के जेवर थे। इतना असली सोना और इतने भारी गहने आजकल मिलते भी नहीं।

वैद्यनाथ को लगा वह मरने के लिए जा रहे हैं। लड़कों को गोद में लेकर चूमा और आंखों में आंसू लिए घर से निकल पड़े। चलते समय मोक्षदा भी रोते लगी।

काशी के मकान के मालिक वैद्यनाथ के चचिया ससुर के मुवक्किल थे। शायद इसी कारण मकान कुछ ज्यादा दामों में वैद्यनाथ के हाथ बिका। वैद्यनाथ ने अकेले ही घर में दाखिल किया। मकान नदी के किनारे ही बना था। नदी का पानी मकान की नींव से लग कर बह रहा था।

रात को वैद्यनाथ को अकेले घर में डर-सा लगा। सूने घर में सिरहाने वह दीया जलाकर, चादर तान सो गया।

पर उन्हें नींद नहीं आ रही थी। रात गहराने पर जब सारा कोलाहल बन्द हो गया, तब किसी चीज के गिरने की झनझनाहट सुनकर वैद्यनाथ चौंक उठे। आवाज हल्की पर साफ थी जैसे पाताल में बलिराज के भंडार में सजांची बैठा-बैठा रुपया गिन रहा हो।

वैद्यनाथ को डर लगा। कौतूहल हुआ। साथ ही आशा भी बंधी। कांपते हाथों से दीया लेकर उन्होंने हर कमरे का चक्कर लगाया। एक कमरे में जाते तो लगता आवाज दूसरे कमरे से आ रही है, उस कमरे

में आते तो लगता आवाज उस कमरे से आ रही है। सारी रात वैद्यनाथ एक कमरे से दूसरे कमरे में घूमते रहे। इसी तरह सुबह हो गई। सुबह दूसरे हजारों शब्दों के बीच एक आवाज खो गई।

रात को दो-तीन बजे के करीब, जब सारी दुनिया सो गई, वह आवाज फिर सुनाई देने लगी। वैद्यनाथ मन ही मन चंचल हो उठे। आवाज के पीछे-पीछे वे किधर भागें, उनकी समझ में नही आ रहा था। रेगिस्तान में पानी की लहरों की आवाज गूंज रही थी, पर वह आवाज किधर से आ रही थी, यही समझ में नही आ रहा था। डर भी लग रहा था कि गलत रास्ता पकड़ने से कहीं वह छिपी हुई जल की धारा से बिल्कुल ही वंचित न हो जाएं। प्यासा राही हतप्रभ-सा खड़ा-खड़ा कान लगाकर सुनने की कोशिश करता है। उसकी प्यास बढ़ती जाती है-वैद्यनाथ की हालत भी बिल्कुल वैसी ही थी।

कई दिन इसी अनिश्चिता के बीच कट गए। अनिद्रा और झूठी उम्मीद से उनके सन्तोष स्निग्ध चेहरे पर चिन्ता की रेखाएं पड़ गई। आंखें धंस गई पर उनकी चौकन्नी आंखों में, रेगिस्तान के धूप में तपे बालू की तरह चमक आ गई।

अन्त में एक दिन सारे दरवाजे बन्द कर कमरे के फर्श पर कुल्हाड़ी मार-मार कर वे जांचने लगे। बगल वाले किसी छोटे कमरे से आवाज हुई।

जब रात गाढ़ी हो आई, वैद्यनाथ अकेले बैठ कर उस कमरे की जमीन खोदने लगे। सुबह होने तक खोदने का काम पूरा हुआ।

वैद्यनाथ ने देखा, उस कमरे के अन्दर एक तहखाना बना हुआ था, पर रात के अन्धेरे में उसमें उतरने की हिम्मत नहीं हुई। वे गड्ढे के ऊपर बिस्तर बिछाकर सो गए। पर तुरन्तु ही आवाज इतनी तेज होने लगी कि वह डर के मारे वहां से उठ गए। लेकिन फिर भी कमरा छोड़कर बाहर जाने की उनकी इच्छा नहीं हुई। लोभ और भय दोनों दो ओर से अपने दोनों हाथ फैलाकर उन्हें अपनी तरफ खींच रहे थे। इसी तरह रात बीत गई।

दूसरे दिन, दिन में भी ठन् ठन् की आवाज सुनाई पड़ रही थी। नौकर को कमरे में न घुसने देकर वे बाहर ही खाना खा आए। खाना खाने के बाद कमरे में जाकर उन्होंने अन्दर से चाभी लगा दी।

भगवान का नाम लेकर उन्होंने गड्ढे पर से अपना बिस्तर हटा लिया। पानी की छल-छल और किसी धातु की ठन्-ठन् की आवाज साफ सुनाई देने लगी।

डरते-डरते उन्होंने गड्ढे के अन्दर झांक कर देखा, नीचे तहखाने में पानी बह रहा था। अन्धेरे में ज्यादा कुछ दिखाई नहीं पड़ा।

उन्होंने एक बड़ी सी लाठी उतारकर देखा कि पानी घुटने से ज्यादा नहीं है। एक दियासलाई और दीया लेकर वह तहखाने में बड़ी आसानी से कूद पड़े। दीया जलाते समय उनका हाथ कांप रहा था कि कहीं पल भर में उनकी सारी उम्मीदें झूठी न हो जाएं। दियासलाई की कई तीलियां बर्बाद कर ही वह

दीया जला पाए।

उन्होंने देखा, लोहे की मोटी जंजीर से एक तांबे का कलश बंधा था। पानी की लहर जब बढ़ती थी और जंजीर के साथ कलश का धक्का लगता था तो ठन्-ठन् की आवाज होती थी।

वैद्यनाथ ने पानी से छप्-छप् करते हुए कलश को पास जाकर देखा। कलश खाली था।

उन्हें फिर भी अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। वह दोनों हाथों से कलश पकड़ कर झकझोरने लगे। अन्दर बिल्कुल खाली था। उन्होंने कलश को उल्टा कर देखा पर उसमें से कुछ नहीं गिरा। कलश का मुंह टूटा हुआ था। लगा, कभी इसका मुंह पूरी तरह से बन्द था, पर बाद में किसी ने तोड़ दिया था।

इसके बाद वैद्यनाथ पानी के अन्दर दोनों हाथों से पागलों की तरह कुछ ढूंढने लगे। कीचड़ के अन्दर किसी चीज पर उनका हाथ पड़ा। उन्होंने उठा कर देखा तो मानव-खोपड़ी थी। वह उसे भी कानों के पास लाकर झकझोरने लगे। उसके अन्दर भी कुछ नहीं था। उन्होंने उसे उठा कर फेंक दिया। उन्होंने उस तहखाने में बहुत कुछ ढूंढा पर मुर्दे की हड्डियों के सिवा उसमें से और कुछ भी नहीं मिला।

वैद्यनाथ ने देखा, दीवार एक जगह से टूटी हुई थी। वहीं से तहखाने में पानी घुस रहा था। उनके पहले ही, जिस व्यक्ति के भाग्य में दैवीधन की प्राप्ति का योग था, वह इसी टूटी दीवार से होकर सारा धन ले गया था।

अन्त में पूरी तरह निराश होकर वैद्यनाथ ने 'मां' कहकर एक मर्मभेदी लम्बी सांस ली। यह सांस मानों अतीत काल के और भी अनेक निराश व्यक्तियों की सांसों से मिलकर बड़ी गम्भीरता के साथ पाताल में प्रतिध्वनित हो उठी।

सारे शरीर में पानी और कीचड़ से लथपथ होकर वैद्यनाथ तहखाने में ऊपर उठ आए।

भरी-पूरी कोलाहलमय दुनिया उनकी आंखों में बिल्कुल झूठी और जंजीर में बंधे टूटे हुए कलश की तरह ही सूनी लगने लगी।

फिर सामान बांधना पड़ेगा, टिकट खरीदना होगा, ट्रेन पर चढ़ना होगा, घर लौटना पड़ेगा, पत्नी के साथ तू-तू मैं-मैं होगी, जीवन का बोझ हर रोज ढोना पड़ेगा, ये बातें उन्हें असहनीय लगीं। इच्छा हुई

कि नदी के पुराने टूटे किनारे की तरह टूटकर वह भी झप् से पानी में गिर पड़ें।

× × ×

लेकिन फिर भी सारा सामान बांधना पड़ा, टिकट भी खरीदना पड़ा और रेलगाड़ी पर चढ़क घर के लिए रवाना भी होना पड़ा।

और फिर जोड़े की एक शाम वह घर के दरवाजे पर जाकर खड़े हो गए। आश्विन के महीने में शरद ऋतु की सुबह में, घर के दरवाजे के पास बैठकर वैद्यनाथ ने अनेक प्रवासी लोगों को घर लौटते हुए देखा था, और लम्बी सांस लेकर मन ही मन परदेश से घर लौटने के सुख के लिए लालायित भी हो उठे थे। उन दिनों आज के शाम की बात की वह कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

घर लौटकर आंगन में रखे लकड़ी के पट्टे पर बेवकूफ की भांति वह बैठे रहे। घर के अन्दर नहीं गए। सबसे पहले घर की नौकरानी ने उन्हें देखा और खुशी से शोर मचाने लगी। लड़के दौड़े आए, और पत्नी ने उन्हें अन्दर बुलवाया।

वैद्यनाथ का नशा जैसे दूर हो गया, अपनी पुरानी गृहस्थी पाकर वह फिर से जाग उठे हैं। उदास चेहरे पर मलिन हंसी लिए, छोटे लड़के को गोद में और दूसरे लड़के का हाथ पकड़ कर वह घर के अन्दर आए।

उस समय घर में दीया जल चुका था। रात अभी हुई नहीं थी, फिर भी जाड़े की शाम रात की तरह निस्तब्ध बनी हुई थी।

थोड़ी देर तक वैद्यनाथ कुछ बोले नहीं। उसके बाद धीरे से पत्नी से पूछा, "कैसी हो?" पत्नी उनके प्रश्न का कोई जवाब न देकर बोली, "वहां क्या हुआ?" वैद्यनाथ ने इसके जवाब में माथा पीट कर इशारे से समझाया, यह देखकर मोक्षदा का चेहरा गम्भीर हो कठोर हो गया।

बच्चे किसी बड़े अमंगल की छाया देखकर धीरे-धीरे वहां से खिसक गए। नौकरानी के पास जाकर बोले, "हजाम की जो कहानी सुना रही थी, सुना।" यह कहकर वे बिस्तर में जाकर सो गए।

रात बढ़ने लगी। दोनों में से किसी की जबान नहीं खुल रही थी, पर सारा घर डरावना-सा लग रहा था। मोक्षदा के ओंठ मानो सिल गए थे।

काफी देर बाद मोक्षदा बिना कुछ कहे वहां से उठी और सोने के कमरे में जाकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया।

वैद्यनाथ चुपचाप बाहर ही खड़े रहे। चौकीदार रात के पहरे पर आवाजें लगाता हुआ निकल गया। थकी-हारी दुनिया गहरी नींद में सो गई-अपने लोगों से लेकर अनन्त आकाश के नक्षत्र तक किसी ने

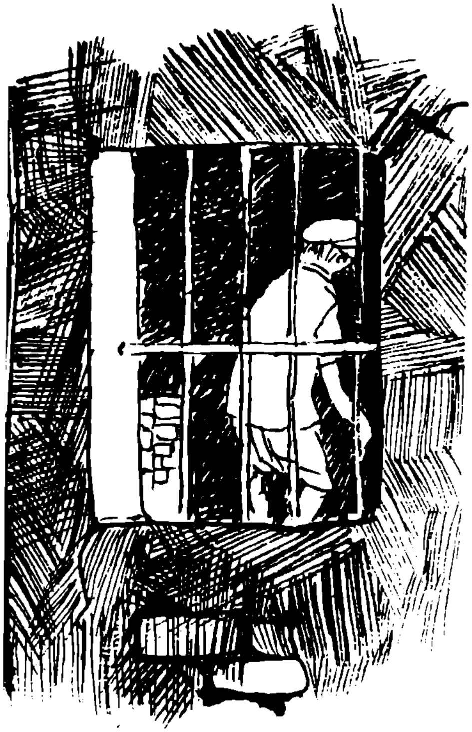

भी इस लांछित रात भर जगे व्यक्ति से एक बात तक नहीं पूछी।

बहुत रात गए शायद किसी सपने से जग कर वैद्यनाथ के बड़े बेटे ने बिस्तर से उठ बरामदे में आकर पुकारा, "पिताजी।" पर उस समय उसके पिताजी वहां नहीं थे।

लड़के ने पहले से भी तेज आवाज में दरवाजे के बाहर से ही पुकारा, "पिताजी।"

पर कोई उत्तर नहीं मिला।

वह डर कर दुबारा बिस्तर में जाकर सो गया।

पहले के नियम के अनुसार नौकरानी सुबह हुक्का तैयार कर वैद्यनाथ का देने आई, पर वैद्यनाथ कहीं नहीं दिखाई पड़े। दिन चढ़ने पर पड़ौसी लोग घर लौटे हुए दोस्त से मिलने आए पर वैद्यनाथ के साथ उनकी भेंट नहीं हो पाई।

इच्छा पूर्ति

सुबलचन्द्र के लड़के का नाम था सुशीलचन्द्र। लेकिन नाम के साथ हमेशा आदमी का मेल नहीं बैठता। सुबलचन्द्र काफी कमजोर थे, और सुशीलचन्द्र बिल्कुल ही सुशील नहीं था।

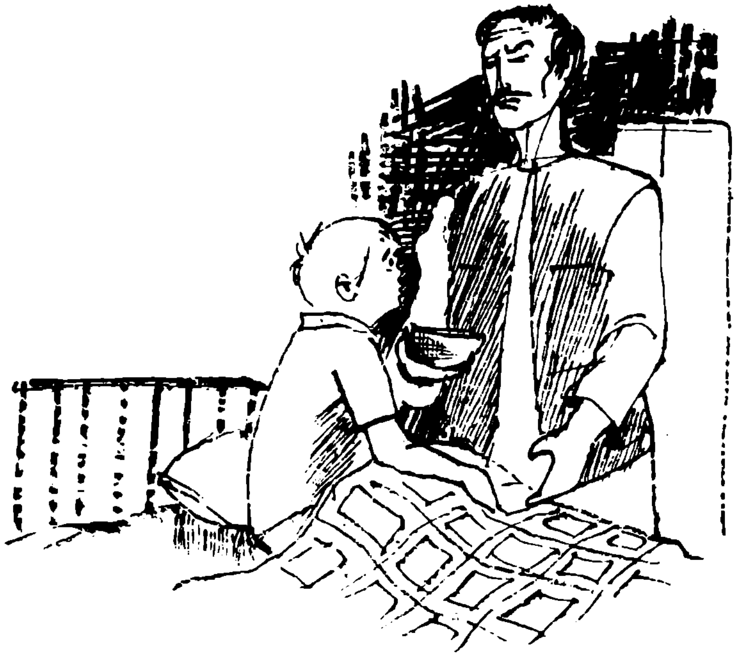

इस लड़के ने पूरे मुहल्ले वालों को तंग कर रखा था। सुबलचन्द्र उसे डाटने धमकाने के लिए लड़के के पीछे-पीछे दौड़ते थे, पर उनके पैरों में वातरोग था और लड़का हिरण की गति से भग सकता था। इसलिए सुबलचन्द्र के थप्पड़ और मुक्के लड़के की पीठ पर हर बार यथा स्थान नहीं पड़ पाते थे। पर जिस दिन सुशीलचन्द्र बाप की पकड़ में आ जाता था। उसकी खैर नहीं रहती थी।

उस दिन शनिवार था। दोपहर के दो बजे ही छुट्टी हो जाने वाली थी, पर आज सुशीलचन्द्र का स्कूल जाने का मन नहीं था। इसके कुछ कारण भी थे। एक तो आज स्कूल में भूगोल की परीक्षा थी और फिर दूसरी तरफ उस मुहल्ले के बोस बाबू के घर शाम को पटाखे छोड़े जाने वाले थे। इसलिए वहां सुबह से ही धूम मची थी। सुशील का मन आज पूरा दिन वहीं बिताने का था।

बहुत सोच-विचार के बाद स्कूल जाने के समय सुशील बिस्तर पर लेट गया। उसके पिता सुबल ने जाकर पूछा, ''क्यों बिस्तर में कैसे पड़ा है। स्कूल नहीं जाएगा?'' सुशील बोला, ''मेरे पेट में दर्द हो रहा है। आज मैं स्कूल नहीं जा सकता।''

सुबल समझ गए कि लड़का झूठ बोल रहा है। वह मन ही मन बोले, ''रुको, आज मैं तुम्हें सबक सिखाता हूं।'' पर प्रकट रूप में बोले, ''पेट में दर्द हो रहा है? तो फिर आज तुम्हें कहीं जाने की जरुरत नहीं। बोस बाबू के घर पटाखे बाजी देखने के लिए हरि को अकेला ही भेज दूंगा। तेरे लिए आज लेमनचूस खरीद कर लाया था, उसे भी खाना ठीक नहीं रहेगा। तू अभी चुपचाप सोया रह, मैं तेरे लिए काढ़ा बनाकर लाता हूं।''

इतना कहकर वह बाहर से दरवाजे पर सिटकनी चढ़ाकर कड़वा काढ़ा बनाने के लिए चल पड़े। सुशील बड़ी मुश्किल में पड़ गया। लेमनचूस वह बेहद पसन्द करता था, और काढा पीने में उसकी जान जाती थी और बोस बाबू के घर जाने के लिए तो उसका मन कल रात से ही छटपटा रहा था। कहीं वहां जाना भी न रुक जाए।

सुबल बाबू जब बड़े से एक कटोरे में काढ़ा बनाकर ले आए तब सुशील धडधड़ा कर बिस्तर से उठ बैठा। बोला, ''मेरा पेट दर्द ठीक हो गया है। मैं आज स्कुल जाऊंगा, पिताजी।''

सुबल बोले, ''नहीं, नहीं। आज स्कूल मत जाना। काढ़ा पीकर तू यहीं चुपचाप सो जा।'' यह कहकर जबर्दस्ती सुशील को काढ़ा पिलाकर उसे सुला दिया और बाहर से कमरे में ताला लगा कर निकल गए।

बिस्तर में पड़ा-पड़ा सुशील पूरे दिन सोता रहा और मन ही मन सोचता रहा-'अगर कल ही मेरी उम्र पिताजी के समान हो जाए तो मेरी मर्जी में जो आए, मैं कर सकूंगा, कोई मुझे रोक नहीं सकेगा'।

उधर सुशील के पिता सुबल बैठे-बैठे सोच रहे थे-'मेरे मां-बाप ने बड़ा ही लाड़-प्यार दिया था, जिस कारण मैं अच्छी तरह पढ़-लिख नही सका। अहा! अगर बचपन फिर लौट आए तो समय बर्बाद न कर मैं लिखने-पढ़ने में ध्यान लगाऊंगा।

इच्छाओं की देवी ठीक उसी समय कमरे के बाहर से गुजर रही थी। बाप और बैटे दोनों के मन की इच्छा जानकर उसने सोचा, क्यों न थोड़े दिनों के लिए इन दोनों की इच्छा पूरी कर दी जाए।

इच्छा की देवी ने बाप से जाकर कहा, ''तुम्हारी मन की इच्छा पूरी होगी। कल से तुम्हें तुम्हारे लड़के की उम्र मिल जाएगी,'' और लड़के से जाकर बोली, ''बेटे कल से तुम अपने पिता की उम्र पा सकोगे।'' यह सुनकर बाप-बेटे दोनों ही बडे खुश हुए।

बूढ़े सुबलचन्द्र को रात में अच्छी तरह नींद नहीं आती थी। सुबह उनकी आंख लग जाती थी। पर आज सुबह होते ही वह छलांग लगाकर बिस्तर से उठ पड़े। उन्होंने देखा, वह काफी छोटे हो गए हैं,

जो दांत गिर पड़े थे, फिर निकल आए हैं, चेहरे से दाढ़ी-मूंछ सब गायब हैं। रात को वह जो धोती कुर्ता पहन कर सोए थे, सुबह वह इतने ढीले हो गये थे कि कमीज की आस्तीन जमीन छू रही थी, कुर्ते का गला छाती पर उतर आया था। धोती इतनी लटक रही थी कि चलना मुश्किल था।

हमारा सुशीलचन्द्र और दिन सुबह उठकर चारों तरफ शैतानी करता फिरता था, पर आज सुबह उसकी नींद ही नहीं खुल रही थी। जब अपने बाप सुबलचन्द्र के शोरगुल से नींद टूटी तो देखा कि कपड़े लत्ते शरीर से इतने जकड़ गए हैं कि फटने वाले हैं, सारा शरीर बढ़ गया है। उसके शरीर पर खूब घने बाल थे। अब उसने सिर पर हाथ फेरकर देखा तो सिर के सामने की तरफ के बाल ही नहीं थे। साफ चांद चमक रही थी।

आज सुबह सुशीलचन्द्र बिस्तर छोड़ना ही नहीं चाह रहा था। कई बार चुटकियां बजाकर, जम्हाई लेकर करवटें बदलता रहा, पर बाद में पिता सुबलचन्द्र के हो-हल्ला मचाने पर नाराज होकर उठ ही गया।

बाप-बेटे दोनों ही इच्छा तो पूरी हो गई, पर एक बड़ी मुश्किल आ खड़ी हुई। मैंने पहले ही कहा था, सुशीलचन्द्र मन ही मन सोचता था कि वह अगर अपने पिता सुबलचन्द्र की तरह बड़ा और स्वतन्त्र हो जाए, तो अपनी मर्जी के अनुसार पेड़ पर चढ़कर, पानी में कूदकर, कच्चे आम चबाकर, चिड़ियों के बच्चे पकड़कर सारे गांव में घूमता फिरेगा। जब मर्जी होगी घर पर लौट कर जो मर्जी खाएगा, कोई टोकने वाला नहीं रहेगा। पर ताज्जुब की बात तो यह थी कि उस दिन सुबह उठकर पेड़ पर चढ़ने का उसका मन ही नहीं हुआ। गन्दे तालाब को देखकर उसे लगा इसमें छलांग लगाने से कंपकपी के साथ बुखार आ जाएगा। बरामदे में चटाई बिछाकर वह चुपचाप कुछ सोचता रहा।

एक बार तो उसे लगा कि खेलना-वेलना बिल्कुल छोड़ देना ठीक नही रहेगा। एक बार कोशिश की जाए। यह सोचकर सामने ही आंवले के एक पेड़ पर उसने चढ़ने की बड़ी कोशिश की। कल तक जिस पेड़ पर वह गिलहरी की तरह सट् से चढ़ जाता था, आज बूढ़े शरी से उस पर थोड़ा भी नहीं चढ़ सका। पेड़ के नीचे की एक टहनी पकड़ कर लटकने के साथ ही शरीर के भार से वह टहनी टूट गई और बूढ़ा सुशील धम्म् से जमीन पर गिर गया। सामने ही सड़क पर से लोग बाग गुजर रहे थे। वे एक बूढ़े को बच्चों की तरह पेड़ पर चढ़ते देख कर हंस-हंसकर लोट-पोट होने लगे। सुशीलचन्द्र शर्मा दुबारा बरामदे में बिछाई हुई चटाई पर आकर बैठ गया। और नौकर से बोला, "अरे ओ, बाजार से एक रुपये के लेमनचूस खरीद कर ला दे।"

सुशीलचन्द्र को लेमनचूस का बड़ा लोभ था। स्कूल जाते समय सड़क के दोनों किनारे रोज तरह-तरह के बोतलों में सजाए हुए रंग बिरंगे लेमनचूस वह देखता था। दो-चार पैसे जो भी हाथ में रहते, उनसे लेमनचूस खरीद कर खाया करता था। उस समय वह सोचता था कि जब वह पिताजी एक रुपये के बहुत सारे लेमनचूस खरीद कर ला दिये तो उनमें से एक उठाकर सुशीलचन्द्र अपने दन्तविहिन मुंह

में डालकर चूसने लगा, पर बुढ़े के मुंह में लेमनचूस अच्छा नहीं लग रहा था। एक बार उसके दिमाग में यह बात भी आई कि क्यों न अपने छोटे बाप को लेमनचूस खाने के लिए कहा जाए। तुरन्त मन में यह भी आया कि नहीं, इतने सारे लेमनचूस खाकर कहीं वह बीमार न पड़ जाए।

कल तक जिन बच्चों ने सुशीलचन्द्र के साथ कबड्डी खेली थी, आज बूढ़े सुशीलचन्द्र को देखते ही भाग खड़े हुए।

सुशील ने सोच रखा था, अपने बाप की तरह स्वतन्त्र होने पर वह अपने दोस्तों के साथ सारे दिन डू-डू-डू कर कबड्डी खेलता रहेगा। पर आज राखाल, गोपाल, अक्षय, निवारण, हरीश और नन्द को देखकर वह मन ही मन नाराज हो गया। सोचा, 'चुपचाप आराम से बैठा हूं अभी ये छोकरे आकर हल्ला मचाएंगे।'

मैंने पहले ही आप लोगों को बताया था कि पिता सुबलचन्द्र हर रोज बरामदे में चटाई बिछाकर बैठे-बैठे यही सोचते, 'जब मैं छोटा था, शैतानी में अपना सारा समय बर्बाद कर दिया था। यदि बचपन के दिन लौट आएं तो सारे दिन में अच्छा बच्चा बनकर कमरे का दरवाजा बन्द कर सिर्फ पढ़ूंगा-लिखूंगा। यहां तक कि शाम को दीया बुझा कर दादी मां की कहानी बन्द कर, दीया जला कर रात को दस-ग्यारह बजे तक पढ़ाई-लिखाई किया करुंगा।

पर बचपन लौटने पर सुबलचन्द्र का स्कूल जाने का मन ही नहीं हो रहा था।

सुशील नाराज होकर आकर कहता, "पिताजी, आप आज स्कूल नहीं जाएंगे?" और सुबल सिर झुका कर माथा खुजला कर कहते, "आज मेरे पेट में बड़ा दर्द हो रहा है, स्कूल नहीं जा सकूंगा।" सुशील गुस्सा कर बोलता, "कैसे नही जाओगे? स्कूल जाने के ना पर इस तरह से मेरे पेट में भी कई बार दर्द हुआ है। मैं यह सब खूब जानता हूं।"

वास्तव में सुशील स्कूल न जाने या स्कूल से भागने के इतने सारे उपाय जानता था कि उसके सामने नई तरकीब ढूंढ लेना सुबलचन्द्र के वश की बात नहीं थी। सुशील जबर्दस्ती अपने छोटे से बाप को स्कूल भेजने लगा। स्कूल से लौट आने पर सुबल थोड़ी देर खेलकूद के लिए बेचैन हो जाता, पर ठीक उसी समय बूढ़ा सुबलचन्द्र आंखों पर चश्मा चढ़ा कर रामायण का पाठ बड़े सुरीले ढंग से गाने के लिए बैठता। सुबल के धूम धड़ाके से उनके पढ़ने में बाधा पहुंचेगी, इसलिए सुबल को वह जबर्दस्ती सामने बैठकर हाथ में स्लेट पकड़ाकर गणित का हल निकालने के लिए कहता। सवाल भी इतने कठिन और लम्बे चौड़े देता कि एक का हल निकालने में ही उसके बाप का एक घंटा समय चला जाता। शाम को बूढ़े सुशील के कमरे में बहुत सारे बूढ़े मिलकर शतरंज खेलते। उस समय सुबल को चुप रखने के लिए सुशील ने उनके लिए एक मास्टर भी रख दिया। वह मास्टर सुबल को रात के दस बजे तक पढ़ाता था।

खाने के मामले में भी सुशील बड़ा कड़ा निकला, क्योंकि उसके पिता सुबल जब बूढ़े थे, तो उन्हें

खाना अच्छी तरह पचता नहीं था। थोड़ा ज्यादा खाने से ही खट्टी डकारें आती थीं-सुशील को ये बातें अच्छी तरह याद थी। इसलिए वह अपने बाप को किसी भी हालत में ज्यादा खाना नहीं देता था। पर एकाएक कम उम्र पाने पर उन्हें इतनी भूख लगती थी कि पत्थर भी मिलने पर वह पचा सकते थे। सुशील उन्हें जितना कम खाने के लिए देता, भूख के मारे वह उतना ही परेशान हो जाते। अन्त में वह इतने दुबले हो गए कि सूकी हड्डी-पसली दिखाई देने लगी। सुशीलचन्द्र ने सोचा, 'उसके बाप को जरूर कोई बड़ी बीमारी लग गई है, इसलिए वह उन्हें दवा पर दवा पिलाने लगा।'

इधर बूढ़ा सुशील भी परेशान था। वह अपनी आदतों के अनुसार जो भी कुछ करना चाहता था, उसे सहन नहीं होता था। पहले कहीं किसी मुहल्ले में ड्रामा, गाना या नौटकी होने पर, चाहे बरसात का मौसम हो या सर्दी का, वह घर से भागकर वहां जरूर पहुंच जाता था। आज का बूढ़ा सुशील वहीं करने गया तो उसे सर्दी-जुकाम, खांसी हो गई। सारे बदन में दर्द हो गया। सिर भारी हो गया। तीन हफ्ते तक वह बिस्तर पर पड़ा रहा। वह पहले हमेशा तालाब में नहाता था। पर आज जब नहाने लगा तो हाथ-पैरों की गांठें सूज गईं। वात रोग ने जोर पकड़ लिया और उसकी चिकित्सा में छह महीने लग गए। उसके बाद वह हर दो-तीन दिन बाद गर्म पानी से नहाने लगा। वह सुबल को भी किसी भी हालत में तालाब में नहाने के लिए नहीं जाने देता। पहले की आदत के अनुसार सुशील कभी-कभी जब पलंग पर से छलांग लगाकर उतरने लगता तो उसकी हड्डियां चटख उठतीं। मुंह में पूरा पान रखता तो ख्याल आता कि दांत तो हैं ही नहीं, पान कैसे चबाऊंगा? भूल कर कभी कंघी और ब्रश लेकर बाल संवारने जाता तो देखता कि बिल्कुल गंजा है। कभी-कभी वह भूल जाता था कि वह अपने बाप की उम्र पाकर बूढ़ा हो गया है, और इस भूल के कारण पहले की ही तरह जब वह शैतानी से मुहल्ले की आनन्दी बुआ के पानी से भरे हुए गगरे में ईट फेंट कर ठन से मारता तो बूढ़े की इस तरह की बचकानी हरकत को देखकर लोग उसे मारने दौड़ते और वह भी शर्मा कर कहां छिपे, समझ नहीं पाता।

सुबलचन्द्र भी अक्सर भूल जाते कि वह आजकल बच्चा बने हुए हैं। अपने को पहले की ही तरह बूढ़ा समझ कर जहां बड़े-बूढ़े ताश या शतरंज खेलते, वहीं जाकर बैठ जाते और बूढ़ों की ही तरह बातें करते। यह सुनकर सभी उन्हें 'जा, जा खेलने

के लिए भाग,' 'बड़ा बोलने आया है बड़े बूढ़ों के बीच' कह कर कान पकड़ कर उन्हें भगा देते। सुबलचन्द्र कभी-कभी भूल कर अपने मास्टर से कह बैठते, "जैरा तम्बाकू इधर भी लाना, थोड़ा मैं भी पी लूं।" यह सुनकर मास्टर उन्हें बेंच पर एक पैर पर खड़ा कर देता।

कभी सुबल हजाम के पास जाकर कहते, "अरे बेजा। कई दिनों से तू हजामत करने के लिए इधर नहीं आया, क्यों?" तो हजाम सोचता, "इत्ता सा छोकरा, वह भी मसखरी करता है।" सुबल के जवाब में हजाम कहता, "दस साल के बाद आया करूंगा।

फिर किसी दिन पहले की आदत के मुताबिक सुबल अपने बेटे सुशील को जाकर मारते तो सुशील बहुत गुस्सा कर कहता, "पढ़ लिखकर यही तुम्हारी बुद्धि है? रत्ती भर का लड़का, बूढ़े पर हाथ उठाता है?" बस चारों तरफ से लोग इकट्ठा हो जाते। कोई उसे डांट-डपट देता, कोई उसके गाल पर थप्पड़ जड़ देता।

अब सुबलचन्द्र एकाग्र मन से प्रार्थना करने लगे, "अहा, अगर मैं अपने लड़के सुशील की तरह बूढ़ा और स्वतंत्र हो जाऊं तो जान में जान आ जाए।"

सुशील भी हर रोज हाथ जोड़कर कहने लगा, "हे भगवान, मुझे मेरे बाप की तरह छोटा बना दो ताकि चैन से खेल-कूद करता फिरूं। पिताजी जिस तरह से शैतानियां करते फिर रहे हैं, मैं अब उन्हें और नहीं संभाल सकता। हमेशा चिन्ता बनी रहती है।"

तब इच्छा की देवी आकर बोली, "क्यों तुम लोगों का शौक पूरा हो गया?"

बाप बेटे दोनों ही साष्टांग प्रणाम कर बोले, "दुहाई मांगते हैं देवी। हमारा शौक मिट चुका है, अब पहले जो जैसा था, वैसा ही बना दो।"

इच्छा की देवी बोली, "ठीक है, कल सुबह उठ कर अपने को वैसा ही पाओगे।"

दूसरे दिन सुबह सुबलचन्द्र पहले की तरह बूढ़े और सुशीलचन्द्र लड़का बनकर नींद से जगे। दोनों को ही लगा जैसे वे स्वप्न से जाग उठे हों। सुबल भारी आवाज में बोले, "सुशील, व्याकरण का पाठ याद नहीं करोगे?" सुशील सिर खुजलाकर बोला, "पिताजी, मेरी किताब खो गई है।"

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ISBN : 81-230-272-6

मूल्य : 60.00 रुपये

प्रस्तुत संकलन में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की ऐसी ग्यारह कहानियां संकलित की गई हैं, जो बाल–मन और किशोर–मन की अपनी सूक्ष्म पकड़ के कारण बालकों और किशोरों को विशेष रूप से आकृष्ट करेंगी।